कँटीले फूल लजीले काँटे

इलाचन्द्र जोशी

राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मूल्य : ढाई रुपये (२५० नये पैसे)
प्रथम संस्करण : मार्च १९५७
आवरण : नरेन्द्र श्रीवास्तव
प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
मुद्रक : हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली

कहानी-क्रम

डाक्टर की फीस

"आ-आ-ऽ ! आ-आ-ऽ ! आ-ऽ-ऽ-ऽ !"

ऊपर कोठे पर से एक बहुत ही धीमी, ऊंघती और कराहती हुई-सी आवाज़ दुमंजिले से छत को जाने वाले जीने से ही कानों में भनकती है। दो बाँके युवक दबे-पाँव दो सीढ़ियाँ चढ़कर ठहर-से जाते हैं। एक साँवले रंग का मझोले कद का आदमी, जिसके सिर के रूखे बाल आधे बिखरे हैं और जिसकी जुड़ी हुई भौंहों के नीचे स्थित आँखों के दो बिलों में दो चिनगारियाँ दहकती-सी मालूम होती हैं, तहमत के ऊपर एक मैली-सी बनियाइननुमाँ बंडी पहने है। वह फटी-सी आवाज़ में कहता है, "चले आइये बाबू जी, बहुत अच्छा माल है ! आपकी तबीयत खुश हो जायगी !"

दोनों बाबू धीमे-से, दबे-पाँव फिर ऊपर चढ़ने लगते हैं। उनमें से एक ऊँची बाढ़वाली गुजराती फैल्ट टोपी, रेशमी कुर्त्ता, मखमल को मात देने वाली धोती और पेटेंट लेदर की चप्पल पहने है और दूसरे साहब कमीज, पैन्ट और पेशावरी सैंडिल।

"आ-आ-ऽ ! आ-आ-ऽ ! आ-ऽ-ऽ-ऽ !" की आवाज़ एक विचित्र और कुछ-कुछ भयावनी एकरसता के साथ कानों के पर्दों से होकर धीरे से भीतर प्रवेश करती है और मन के तारों से टकराकर अत्यन्त अप्रिय स्वर में गूँजने लगती है।

तीनों छत में पहुँचते हैं। बाहर एक भी बत्ती जली नहीं है। पास ही एक कमरे के बाहर क्षीण प्रकाश झलक रहा है। उसी के सहारे दोनों बाबू तहमत वाले का अनुसरण करते हुए आगे बढ़ते हैं। आदमी कमरे के दरवाज़े के भीतर खड़ा हो जाता है और कहता है, " चले आइये !" दोनों दबे हुए पाँवों से धीरे-धीरे आगे बढ़ते हैं और दरवाज़े के पास पहुँचकर भीतर

की ओर देखते ही ठिठककर खड़े रह जाते हैं। कमरे में बिजली की बत्ती नहीं, लालटेन जल रही है, जिसकी चिमनी मिट्टी के तेल के धुएँ की कालिख से इस कदर काली हो गई है कि बत्ती की टेढ़ी-मेढ़ी शिखा एकदम आग की तरह लाल दिखाई देती है। बाँस की एक खटिया पर मैली-सी चादर के ऊपर एक नारी मैले कपड़े पहने लेटी ऊँघ-सी रही है। उसी ऊँघती हुई हालत में बगल में बैठे हुए साल-डेढ़ साल के बच्चे की पीठ धीरे से, सम्भवतः अभ्यासवश, थपथपाती हुई बहुत ही थके हुए स्वर में, जैसे अनमने भाव से कहती जाती है, "आ-आऽ! आ-आऽ ! आ-ऽ-ऽ !

"जमुना उठ, देख तो, कोई बाबू आये हैं !" तहमत वाला खटिया को हिलाते हुए रूखे स्वर में कहता है। वह हड़बड़ाती हुई उठ बैठती है और मुरझाई हुई-सी हताश आँखों से दोनों की ओर देखती है। उसके मुख पर का पौडर मुरझा चुका है, गालों की उभरी हुई हड्डियों के नीचे दो गहरे गढ़े पड़े हुए हैं। कपाल की उभरी हड्डी के नीचे आँखें इस कदर भीतर को धँस गई हैं कि पलक तक छिप गये हैं। छोटी-सी चपटी नाक शरमाकर सिकुड़ गई है। ओठों का बायीं तरफ वाला भाग एकदम खून की तरह लाल है और दाहिनी तरफ वाला काजल से भी काला। छोटी-सी ठुड्डी अंजीर की तरह लटकती हुई-सी लगती है।

दोनों युवक एक झलक देखकर इस फुर्ती से लौट जाते हैं, जैसे कोई भूत देखकर भागना चाहते हों। खटिया पर बैठी हुई स्त्री कुछ समय तक हक्की-बक्की आँखों से बाहर की ओर देखती रह जाती है, उसके बाद तहमत वाले की ओर हिंसक आँखों से देखती हुई कहती है, "तुम मेरी इस हालत में उन लोगों को सीधे ऊपर बुला लाये !"

"किसे खबर थी कि तू अभी तक इस तरह पड़ी होगी ? दिया जले इतनी देर हो गई और अभी तक मुँह धोकर, कपड़े पहनकर तैयार नहीं हो पाई ! दिन पर दिन तेरी आदतें बिगड़ती चली जा रही हैं !" खीझ-भरे स्वर में झल्लाता हुआ तहमत वाला कहता है।

"हूँ ! और तुम इस कदर कमीने हो उठे हो कि सब कुछ देखकर

भी नहीं देखना चाहते।" दाँत पीसती हुई जमुना कहती है। "एक हफ्ते से बच्ची बीमार है और आज यह हालत हो गई है कि बुखार से एकदम बेहोश पड़ी है। सारा बदन तवे-सा जल रहा है। तिस पर भी कहते हो कि अभी तक तैयार नहीं हो पाई। गलकर मरोगे, मुँह में कीड़े पड़ेंगे, देख लेना। धरती इतना अन्याय कभी नहीं सहेगी। कभी एक बार भी तुमने झूठे मुँह यह नहीं पूछा कि बच्ची का क्या हाल है ? न किसी डाक्टर को दिखाया, न वैद्य को या हकीम को, और ऊपर से यह रौब कि···खुद मैं इतने दिनों से मीठे बुखार से पस्त पड़ी हुई हूँ। हड्डी-हड्डी टूटी हुई-सी लगती है, खटिया से नीचे उतरने की ताकत नहीं रह गई है। पर तुम्हें इन बातों से क्या वास्ता ! तुम ऐसे कफ़न-खसोट हो कि पैसों के सिवा तुम्हें और किसी बात की फिकर नहीं है। अगर मेरी एक-एक हड्डी, एक-एक पसली बेचकर भी तुम्हें कुछ पैसे मिल सकें तो तुम तैयार हो। तुम इतने बड़े चमार हो ! अपनी इन आँखों से मैं तुम्हें सड़-गलकर तड़प-तड़पकर मरते देखना चाहती हूँ···"

"तू मरते हुए जब देखेगी तब देखेगी, पर मैं तुझे अभी प्रत्यक्ष मरते हुए देख रहा हूँ। अभी तुझे न जाने दुर्गति की किस हद तक पहुँचना है। साक्षात् भुतनी-सी लगने लगी है। कोई गाहक फँसने वाला हो भी तो कैसे फँसे ! चल उठ जल्दी ! हाथ-मुँह धो, पौडर और लिपिस्टिक लगा और कपड़े बदलकर बाहर कोठे पर चल। आज चार दिन से मेरा हाथ तंग है। एक पैसा कमाकर तूने नहीं दिया। एक पौवा क्या एक छटाँक तक पीने को नहीं मिली है। जबान सूखकर काँटा हो गई है··· चल उठ !" कहकर वह उसका हाथ अपनी मुट्ठी में कसकर उसे खटिया के नीचे खींचता है। वह पूरी ताकत से प्रतिरोध करती है, पर वह उसे गुसलखाने की ओर घसीटे लिये जाता है।

"छोड़ो ! छोड़ो ! नहीं तो मैं तुम्हारा गला पकड़कर घोंट डालूँगी," वह छटपटाती हुई रोने के स्वर में कहती है। उसका हाथ दाँतों से काट-कर अपने को छुड़ाती है, "तुम आदमी नहीं पिशाच हो !" वह फिर

कहती है, "मरघट का चाण्डाल भी इस तरह कफ़न नहीं खसोटता, जिस तरह तुम इतने बरसों से बूंद-बूंद चूसकर मेरी मरी हुई खाल खींचते चले जा रहे हो, और तिस पर घाव में माहुर देने के लिये ऐसे मरम वचन बोल रहे हो। मैं साक्षात् भुतनी लगती हूँ तो इसमें मेरा दोष है ? कमीने, कसाई ! यह क्यों भूल जाता है कि जब तू चिकनी-चुपड़ी बातों से भुलाकर तरह-तरह के लालच दिखाकर मुझे अपने साथ भगा ले आया था तब तो मैं भुतनी नहीं थी। तब मेरी तन्दुरुस्ती का यह हाल था कि तू ही कहा करता था, 'वह कौन-सी दवा है, मुझे भी बता दे जिसे खाकर तू दिन पर दिन लाल हुई चली जाती है !' और आज मैं सचमुच भुतनी-सी लगती हूँ, मैं जानती हूँ। ढाई साल के भीतर मेरा यह हाल हो गया है। किसके दोष से ? तूने तब कहा था, 'लखनऊ में मेरी कपड़े की बहुत बड़ी दुकान है। मैं तुमसे ब्याह करूँगा और दोनों सुख से रहेंगे।' मैं तब भोली लड़की थी; नयी जवानी मुझ पर छाई हुई थी, इसलिये आँख मूँद-कर तेरे साथ चली आई। तब मुझे क्या पता था कि तू इतना बड़ा शैतान निकलेगा ! लाला के यहाँ चौका-बर्तन करती थी, उनके बच्चे को खिलाती थी, जो थोड़ा-बहुत रुपया मिलता था उसे गरीब माँ-बाप को दे देती थी और खुद रूखा-सूखा खाकर मुसीबत की जिन्दगी बिताती हुई भी खुश थी। बीच में तू मुझे बरबाद करने के लिये कहाँ से आ कूदा ! तूने मुझे मार-मारकर मजबूर किया कि मैं पेशे की जिन्दगी बिताऊँ। जिन्दगी सबसे प्यारी है। न चाहने पर भी मैं पेट की खातिर इस नरक में गले-गले तक डूब गई, पर डूबकर भी पेट न भर सकी। उस कीचड़ को उलीचकर जो थोड़े-बहुत पैसे बटोर पाई थी उन पर तू बराबर चील की तरह झपट्टा मारकर मेरे लिये एक पैसा भी नहीं छोड़ता रहा। तुझसे चुराकर कभी कुछ कमाने का मौका मिल जाता तो उनसे पेट भर लेती, नहीं तो मुझे ज्यादातर भूखा ही रहना पड़ा है। तुझे या तो अपने पौवे की फिक्र रही है या उस चुड़ैल की जिसने तुझ जैसे कफन-खसोट को भी नंगा-बूचा बना दिया है, और जो अब तुझे जूते मारकर बाहर निकाल देती है। तेरी

ही खातिर मेरी यह दुर्गति हुई है और आज तू ही मुझसे कहता है, 'भुतनी !' और तिस पर कमीनेपन की हद देखो कि अभी तक मेरा पीछा नहीं छोड़ रहा है। मेरी बच्ची मर रही है, मैं खुद बीमार हूँ, पर फिर भी तुझे जरा भी तरस नहीं आता। मेरी इस हालत में भी तू यह चाहता है कि तेरा पौवा जुटाने के लिये मैं···डाक्टरी इलाज के बिना, दवा के बिना मेरा सरबस छिन रहा है, मैं बेबस पड़ी हूँ। यह सब देखते हुए भी तू अपने कसाईपन से बाज नहीं आता ! धिक्कार है ऐसे नीच पर, थू पड़े ऐसे बदजात पर !" और वह जोर से 'थू !' कहती हुई सच-मुच उसकी ओर थूकती है।

तहमत वाला आदमी हाँफता हुआ उसकी ओर विकट भयावनी दृष्टि से देखता है और दाँतों को पीसता हुआ अपने दाहिने हाथ की पतली और लम्बे नाखून वाली उँगलियों को इस तरह नचाता है जैसे बिल्ली की तरह अपने शिकार पर झपटना ही चाहता हो।

"मुझे पैसा चाहिये पैसा !" वह दाँतों को किटकिटाता हुआ कहता है, "जहाँ से हो, जैसे भी हो मुझे तीन रुपये अभी चाहियें ! अगर तू जल्दी इन्तजाम नहीं करती है तो मैं तेरे कपड़े बेचकर इन्तजाम करूँगा··· तूने कुछ रुपये छिपाकर रखे हैं, मुझे मालूम है। निकालकर मुझे जल्दी दे, नहीं तो आज तुझे जीता नहीं छोड़ूँगा···"

"हाँ मेरे पास हैं; मैं नहीं दूँगी तुझे। जो कुछ करना है कर ले !" वह जिद के साथ कहती है।

"नहीं देती ? तो आज मैं फाँसी पर ही चढ़ूँगा" और वह उसका गला दबा लेता है। बाहर कहीं से आवाज आती है, "श्यामलाल है ?" अपना नाम सुनकर वह गला छोड़कर दरवाजे के पास जाता है। भीतर से किवाड़ बन्द कर देता है, फिर लौटकर उसका गला पकड़ लेता है। वह कभी नाखून से उसका मुँह नोचती है और कभी उसके बालों को खींचती है। वह सहसा गला छोड़कर कमरे के चौखटे पर जाता है और एक पुराना जूता उठाकर उसके सिर पर पटापट मारना शुरू कर देता

है। वह थक जाने के कारण प्रतिरोध करने में अपने को असमर्थ पाती है। धम्म से फर्श पर बैठकर दोनों हाथों को दोनों ओर फैलाकर हाँफती हुई कहती है, "मार, मार हत्यारे ! जितना तेरा जी चाहे मार ले ! खून कर डाल ! यही अच्छा है !" बिखरे हुए बालों के गुच्छे से उसकी दोनों आँखें आधी ढक गई हैं। उसका चेहरा पहले से भी भयावना लगने लगता है।

श्यामलाल उसे छोड़कर खटिया के नीचे घुस जाता है और एक पुराने बक्स को घसीटकर बाहर निकालकर हाथ के झटके से उसके छोटे-से ताले को तोड़ने लगता है। दो-तीन झटकों में ही ताला खुल जाता है। जमुना जैसे मरते-मरते फिर उठ बैठती है और पीछे गर्दन से उसकी बंडी पकड़कर खींचती हुई कहती है, "उसमें हाथ लगाओगे तो ईंट से हाथ तोड़ डालूँगी।"

पर वह बक्स खोलकर टटोलता रहता है। एक कोने में एक मैले कपड़े के चिथड़े में बँधे हुए दो रुपये निकालकर अपनी अंटी में दबा लेता है। जमुना छीनने की कोशिश करती है, पर वह झटके से अपने को छुड़ाकर भाग निकलता है। जमुना फर्श पर पछाड़ खाकर लेट जाती है। बहुत देर तक उसी हालत में लेटी ही रह जाती है। खटिया पर पड़ी उसकी बच्ची बहुत ही क्षीण स्वर में कराहती हुई रोने की कोशिश करती है, पर रो नहीं पाती। जमुना के कानों में आवाज़ जाती है, पर वह फिर भी उसी तरह औंधी पड़ी रह जाती है।

बच्ची का छटपटाना बढ़ता जाता है, जिससे खसर-खसर की आवाज़ होती है। अन्त में जमुना कमर पर बायाँ हाथ रखकर धीरे से उठ बैठती है। उसकी आँखें रोने से लाल दिखाई देती हैं। धुमैली लालटेन की बत्ती की तरह ही खटिया पर धीरे से चढ़कर वह अपना झूलता हुआ निःसत्व स्तन बच्ची के मुँह पर लगाती है। बच्ची अभ्यासवश चूसने का प्रयत्न करती है पर फिर तत्काल ही उसे छोड़कर मुँह फेरने लगती है। जमुना उसकी पीठ थपथपाती रहती है और अनमने भाव से 'आ-आऽ ! आऽ-

आऽ-आऽ-ऽ!' कहती हुई न जाने क्या सोचती जाती है।

कुछ देर बाद उसका थपथपाना बन्द हो जाता है। हाथ बच्चे की पीठ पर निश्चल पड़ा रहता है। वह ऊँघने लगती है। लालटेन की कालिख से पुती हुई चिमनी के भीतर लाल बत्ती धप-धप जलने लगती है और उसकी दो सींगों-सी लम्बी शिखाएँ एकदम चोटी तक पहुँच जाती हैं। छोटे-छोटे पतिंगे उसे घेरकर चिमनी पर चट-चट शब्द करते रहते हैं।

सहसा वह चौंक-सी उठती है और उचककर उठ बैठती है। खटिया से उतरकर लालटेन के पास जाती है और उसके नीचे पेंच घुमाकर बत्ती को नीचे सरकाती है। रोशनी कम हो जाती है पर बत्ती 'धप-धप' आवाज़ करती रहती है।

वह खटिया के नीचे घुसकर बक्स को बड़े कष्ट से एक कराह के साथ खींचती है, फिर उसे खोलकर उसमें से एक सस्ते किस्म की लाल और हरे रंगों की मोटी धारियों वाली साड़ी और उसीसे मिलता-जुलता जम्पर भी निकालती है। साड़ी बंडल की तरह मुड़ी हुई है। जम्पर गुलाबी रंग के नकली रेशम का है और कई बार पहना हुआ-सा लगता है। किवाड़ भीतर से बन्द करके वह कपड़े बदलती है। उसके बाद आले पर रखे हुए एक छोटे-से फूटे शीशे के सामने खड़ी हो जाती है। वहाँ पर गुलाबी रंग की एक प्लास्टिक की कंघी रखी है जिसके अधिकांश दाँत टूटे हुए हैं। उससे बाल सँवारने लगती है। कई दिनों से बिना धुले पड़े बालों की जटाएँ-सी बन गई हैं। बड़े कष्टों से किसी तरह बालों को पीछे की ओर करके एक अधमैले पीले डोरे से जूड़ा बाँधती है, उसके बाद चीनी मिट्टी की एक कुलिया के भीतर तले में उँगली डालकर क्रीम की तरह की कोई चीज निकालती है और फिर दोनों हाथों में उसे मलकर गालों पर हाथ फेरती है। उसके बाद टीन के एक डिब्बे में रूई से पौडर निकाल-कर मुँह पर लगाती है और फिर कपाल को और गालों को धीरे से दोनों हाथों से मलती है। फिर दोनों गालों की उभरी हुई हड्डियों पर और उनके नीचे 'रूज' लगाती है। सूखे हुए और काले रंग के होठों को किसी

लाल चीज के टुकड़े से रँगती है। अन्त में दोनों भौंहों के बीच में खून की तरह लाल रंग की छोटी-सी टिकुली चिपकाती है। अनिपुण हाथों से किये गये इस अजीब-से शृंगार के कारण उसका प्रेत की तरह चीमड़ मुख और अधिक भयावना लगने लगता है। पर उसके चेहरे से पता चलता है कि उसे उस शृंगार से बहुत संतोष है। वह बार-बार शीशे में अपना मुँह देखती है। कभी बालों पर हाथ फेरती है और कभी गालों पर।

शीशे के पास से हटकर फिर वह खटिया के पास आती है। बच्ची की ओर अत्यन्त करुण, उदास आँखों से देखती है। बच्ची की साँस बड़ी तेज चल रही है। वह बेहोश-सी पड़ी है। बीच-बीच में करवट बदलने का प्रयत्न करती है पर फिर आधी ही करवट बदलकर रह जाती है। एक लम्बी साँस लेकर वह दरवाजे की ओर बढ़ती है। किवाड़ छोड़ देती है, उसके बाद धीरे से लड़खड़ाते पाँव से जीने से होकर नीचे उतरती है।

नीचे बाहर की ओर के तंग बारजे पर तीन स्त्रियाँ साज-शृङ्गार किए हुए बैठी हैं और नीचे की तंग गली में आने-जानेवाले राहगीरों की ओर उत्सुक दृष्टि से देख रही हैं। जमुना भी वहीं आकर धीरे से एक बेंच पर बैठ जाती है। तीनों स्त्रियाँ उसकी ओर एक झलक देखकर व्यंग-भरी सांकेतिक मुस्कान से एक दूसरी की ओर देखती हैं। उनमें जो लड़की सबसे जवान है वह बार-बार जमुना की ओर देखती है और बार-बार मुँह में रूमाल डालकर विचित्र ढंग से मुस्कराती है। जमुना उनकी ओर से मुँह फेरकर, जंगले पर हाथ और हाथ पर ठुड्डी रखकर निर्विकार, उदासीन दृष्टि से नीचे की ओर देखती रहती है।

नीचे आने-जानेवाले प्रायः सभी राहगीर ऊपर की ओर देखते रहते हैं। बीच-बीच में दो-एक राहगीर ऊपर चढ़ आते हैं और बारजे के पास जाकर बड़े गौर से एक बार चारों की ओर सरसरी नजर डालते हैं। एक-एक करके तीनों स्त्रियाँ विभिन्न ग्राहकों के बुलाने पर भीतर चली जाती हैं। बारजे में अकेली जमुना रह जाती है। जो भी आदमी आता है वह

उसकी ओर देखते ही मुँह फेर लेता है।

बहुत देर हो जाती है और जमुना वहीं बैठी रह जाती है। कभी वह नीचे की ओर देखती है कभी सामने की ओर। सामने वाले मकान के कोठे पर भी एक स्त्री हरे रंग की साड़ी और पीले रंग का ब्लाउज पहने बहुत देर से बैठी है। सूरत-शक्ल और साज-शृङ्गार से वह जमुना से भी भयानक लगती है। बैठे-बैठे जमुना के सिर में दर्द होने लगता है और चक्कर-सा आने लगता है। आज बहुत दिनों बाद उसे अपने ऊपर तरस आता है; अपने चेहरे पर भी और अपने पेशे पर भी। वह सस्ते दामों पर अपने को बेचने के लिये कोठे पर बैठी हुई है, पर कोई खरीद-दार ही नहीं मिलता, जबकि दूसरी सभी लड़कियाँ आसानी से ग्राहकों को खींच ले रही हैं! उसके जड़ और प्रायः मृत मन पर आज पहली बार विद्रोह की एक चिनगारी जल उठती है। पर जलते ही बुझ भी जाती है। उसके मन में रह-रहकर केवल एक ही बात की चिन्ता सिर उठाती रहती है—किसी ग्राहक से दो-चार रुपया मिले और वह एक बार किसी डाक्टर या वैद्य को बुलाकर बच्ची को दिखाये—मन में यह मलाल न रह जाने पाये कि किसी डाक्टर या वैद्य को न दिखाने और कुछ भी इलाज न करने के कारण बच्ची मर गई। इसलिये वह फिर कमर कसकर भरसक धैर्य धारण करके ग्राहक की प्रतीक्षा में बैठी रहती है—दुःख और ग्लानि की सारी भावनाओं को वह घोलकर पी जाती है।

काफ़ी देर हो गई है। प्रायः साढ़े बारह का समय होगा। नीचे गली में चलने-फिरने वाले राहगीरों की संख्या कुछ घटी हुई-सी लगती है। जो दो-एक व्यक्ति उस तरफ से होकर गुजरते हैं वे एक झलक उसकी ओर देखकर तत्काल आँखें फेर लेते हैं। सामने के मकानों के कोठे पर बैठी हुई दूसरी स्त्रियों की ओर वे सतृष्ण नयनों से देखते रहते हैं। बाईस-तेईस वर्ष की एक स्त्री—जो पहले बारजे पर बैठी हुई थी और फिर किसी ग्राहक के साथ भीतर चली गई थी, फिर लौटकर आती है और जमुना से कुछ दूर हटकर एक टूटी कुर्सी पर बैठ जाती है।

प्राय: साठ वर्ष का एक बुड्ढा मलमल का कुर्त्ता (जिस पर दो-तीन जगह पीक के दाग पड़ गये हैं) और पीली किनारे की चुन्नटदार एकलाई धोती पहने, सिर पर पीले रंग का साफा बाँधे और पाँवों में पेटेंट लेदर के पम्प शू पहने उसी बारजे पर आ खड़ा होता है। वह बारी-बारी से दोनों की ओर बिना कुछ बोले देखता रहता है। दूसरी स्त्री विचित्र मुस्कान-भरे हाव-भावों से उसे फाँसने का प्रयत्न करती है। वह भी मुस्कराता है। इस बार भी गाहक हाथ से जाते देखकर जमुना आव देखती है न ताव। सहसा उठकर एकदम बुड्ढे के निकट खड़ी हो जाती है और उसका हाथ पकड़ लेती है। अपने मुरझाये अधमरे और वीभत्स शृंगार के कारण हास्यास्पद—बल्कि भयानक—चेहरे पर बरबस मुस्कान झलकाने का प्रयत्न करती है। बहुत अधिक पान खाते रहने के कारण गन्दे और बहुत दिनों से बिना साफ किये हुए दाँतों को बाहर निकालती है। बुड्ढा उसे देखकर कतराकर अलग हट जाने की कोशिश करता है, पर वह सहसा उसे अपनी दोनों बाहों से जकड़ लेती है। मन ही मन कहती है, "डाक्टर ! डाक्टर ! मुझे हर हालत में डाक्टर की फीस जुटानी है ! तुम्हें मैं यों ही नहीं जाने दूँगी।" और प्रकट में कभी बुड्ढे को इस तरह पुचकारती है जैसे वह एक छोटा-सा बच्चा हो, कभी अल्हड़ लड़कियों की तरह मचलने का-सा भाव जताती है और कभी गिड़गिड़ाती हुई आँखों से उसकी ओर देखती है। इसके बाद वह बुड्ढे का हाथ पकड़कर अपने साथ प्राय: खींच ले जाने का प्रयत्न करती है। इस बार बुड्ढा प्रतिरोध करता है और अपने को छुड़ाकर दूसरी स्त्री की ओर उंगली से संकेत करता है। वह स्त्री तत्काल उठ खड़ी होती है और बुड्ढे के साथ भीतर चली जाती है।

जमुना मर्माहत होकर अत्यन्त हताश दृष्टि से कुछ क्षणों तक उसी ओर देखती है जिस ओर दोनों गायब होते हैं। उसके बाद एक लम्बी साँस लेकर गिरती-पड़ती उसी बेंच पर जाकर बैठ जाती है जहाँ वह पहले बैठी थी।

वह अनमने भाव से कभी नीचे गली में चक्कर पर चक्कर काटने वाले आदमियों को देखती है, कभी सामने वाले मकान की ओर ! सामने वाले मकान के बारजे में जो नयी उम्र की लड़कियाँ सज-धजकर बैठी थीं उन्हें एक-एक करके गाहक मिल जाते हैं, पर हरे रंग की साड़ी वाली वह स्त्री, जो रूप-रंग में जमुना से भी अधिक डरावनी मालूम होती है, अभी तक बैठी ही है। उसे भी कोई गाहक अभी तक नहीं मिला है। बीच-बीच में जमुना उसकी ओर देखती है और वह जमुना की ओर। उस स्त्री के बाल कंघी से पान के पत्ते के आकार में इस तरह सँवारे गये हैं कि दाहिनी ओर का आधा कपाल उनसे ढँक गया है। उसके मुँह पर बहुत देर से लगे हुए पौडर और रूज के फीके पड़ जाने के कारण चेहरा एकदम मुरझाया हुआ लगता है। वह ठुड्डी को जंगले की ऊपर वाली लकड़ी पर रखकर झुकी हुई-सी बैठी है और इसी मुद्रा में कभी जमुना को देखती है कभी नीचे की ओर। उसके चेहरे पर एक निर्विकार उदासीन छाया घिरी हुई दीखती है और वह बीच-बीच में ऊँचे स्वर में 'आऽ-ऽ-ऽ- ! शब्द करके जम्हाई लेती है और कभी-कभी उसके साथ अँगड़ाई भी। जमुना उसकी ओर देखकर आन्तरिक पीड़ा के साथ ही ग्लानि की भावना से भीतर ही भीतर सिकुड़-सी जाती है।

वह सोचती है कि इस स्त्री की और स्वयं उसकी अपनी तरह की कुरूप स्त्रियाँ क्यों इस पेशे को अपनाती हैं ? क्यों घंटों बारजों पर बैठकर इस तरह का अपमान सहती हैं ? उस बुड्ढे खूसट तक को जब वह राजी न कर सकी तब वह स्वयं किस उम्मीद से इतनी देर तक बैठी हुई है ? इससे बड़ी जलालत और क्या हो सकती है ! अच्छा तो यह होगा कि वह यदि और कोई दूसरा उपाय अपने लिये दो जून का खाना जुटाने का नहीं कर पाती है तो वह कल या तो विष खाकर मर जाय या गोमती में डूब मरे। कब तक जीवन के टूटे छकड़े को इस तरह घसीटा जा सकता है ! पर उसकी प्यारी बच्ची जो मर रही है ! उसके लिये डाक्टर की फीस का प्रबन्ध तो हर हालत में करना ही होगा ! पर कैसे ? जैसा ढंग

चल रहा है उससे तो यही लगता है कि सुबह होने तक भी एक भी गाहक उसे मिलना मुश्किल है। इसका अर्थ स्पष्ट ही यह है कि उसकी कुरूपता इधर बहुत बढ़ गई है—जितना वह शीशे में मुँह देखकर समझती है उससे भी कई गुना अधिक। ढाई वर्ष पहले जब श्यामलाल उसे भगा लाया था तब वह कितनी सुन्दर और स्वस्थ थी! तब जो भी गाहक आता था वह सबसे पहले उसी से बातें करता था। वह अकड़ती थी और गाहक उसे अधिक रुपयों का प्रलोभन देते हुए मनाते थे। केवल तीन ही वर्षों के भीतर इतना बड़ा बदलाव उसके रूप और रंग में हो गया! अपना सारा सत्व बेचकर आज वह हड्डियों का एक ढाँचा बनकर रह गई है, जिसके ऊपर झिल्ली चढ़ा दी गई हो। आज उसे देखकर गाहक स्पष्ट ही मारे भय के भागने लगते हैं। ठीक है, श्यामलाल ने झूठ नहीं कहा था। वह आज सचमुच भुतनी बनकर रह गई है। पर इसमें दोष किसका है! और फिर श्यामलाल का वह राक्षसी रूप उसकी आँखों के आगे नाचने लगता है, जो उसने उसके बहुत कष्ट से बचाये हुए दो रुपये खसोटते समय उसके आगे प्रकट किया था। वह सोचने लगती है कि श्यामलाल सचमुच का राक्षस हो गया है—यम का दूत, मरघट का कफ़न-खसोट चाण्डाल! और उस राक्षस को एक दिन उसने चाहा था! उसकी बात का विश्वास आँख मूँदकर करके वह बिना किसी शंका के अपने माँ-बाप को छोड़कर उसके साथ भाग निकली थी। तब कौन जानता था कि उस शैतान का पेशा कुछ और ही है और वह उसे हर अजनबी के हाथ बेचने के लिये मजबूर करना चाहता है! तब वह कैसी प्यारी-प्यारी चिकनी-चुपड़ी बातें किया करता था! उसने कहा था कि दोनों एक नया संसार बसायेंगे और वह चूल्हा-चौका करके गरीब माँ-बाप के साथ रहकर कष्टमय जीवन बिताने से छुट्टी पा जायेगी। उसे जो जिन्दगी एक बहुत बड़े असहनीय बोझ की तरह भार मालूम हो रही है वह एक रंगीन सपने में बदल जायेगी। पर आज उसकी जिन्दगी अंधेरे पाख में आधी रात के डरावने सपने की तरह बीत रही है। कितना बड़ा धोखा दिया

उस लबरे ने ! जब वह भागकर उसके साथ चली आई तब उसे मालूम हुआ कि उसकी कपड़े की दुकान कभी नहीं रही। वह कभी फेरी करके कपड़े बेचा करता था और बाद में बुरी सोहबत में पड़ जाने से अपना सब कुछ बेचबाच दिया और शराब पीने में और वेश्याओं के संसर्ग में सब रुपये उड़ा दिये। इसके बाद वेश्याओं की दलाली करने लगा। जब जमुना से वह पहले पहल मिला था तब वह दलाल ही था और यह बात उसने जमुना से छिपाई थी। नौजवान जमुना को अच्छी दुधारू गाय समझकर उसे पेशेवर जीवन बिताने को मजबूर करने का इरादा उसका पहले ही से था, यह बात बाद में स्पष्ट हो गई। जमुना को उन दिनों की बात याद आती है जब लखनऊ पहुँचते ही उसने उसे एक बुड्ढे सेठ को फँसाने का साधन बनाना चाहा था—यह कहकर कि वह एक अच्छे गृहस्थ की लड़की है। जमुना बुड्ढे के यहाँ से भागकर चली आई थी। इसके बाद चौक की एक तंग और गन्दी गली में एक कोठरी के भीतर श्यामलाल ने उसे बन्द कर दिया था और उसके बार-बार विरोध और प्रतिरोध करने पर यह धमकी दी थी कि यदि वह उसकी बात नहीं मानेगी तो वह उसे भूखों मरने के लिये उसी काल कोठरी में बन्द रखकर छोड़ देगा। वह फिर भी नहीं मानी और उसने उसे सचमुच भूखों मारना शुरू कर दिया। चौबीस घन्टों में एक-आध रूखी-सूखी रोटी वह उसके सिर पर पटक देता था। उसे और कुछ भी खाने को नहीं देता था। इसके अलावा उसे बीच-बीच में पीटता रहता था। अन्त में अपनी और कोई दूसरी गति न देखकर तंग आकर वह राजी हो गई। वह अभी मरना नहीं चाहती थी। अभी वह एक प्रकार से मासूम लड़की ही थी। अभी उसने जिन्दगी में देखा ही क्या था ? वह अपने बन्द कमरे की खिड़की से बीच-बीच में सामने बारजे पर बैठने वाली कोठेवालियों को देखा करती थी। वे सब शाम होते ही सजधज कर नये और रंग-बिरंगे कपड़े पहनकर बारजे में बैठ जाती थीं। बाहर से देखने में वे बहुत खुश मालूम होती थीं। लगता था कि वे मुक्त जीवन बिताती हैं और

उनके ऊपर किसी का बन्धन नहीं है। जब वह भूखों मरने लगी और मार खाने लगी तब उसने सोचा कि उन्हीं की तरह जीविका कमाने में हानि ही क्या है ! इस तरह तड़प-तड़पकर मरने से तो वह अच्छा ही होगा। और कौन जाने ! उस रंगीन जीवन में उसे एक अनजान सुख भी मिल सकता है। श्यामलाल उसे वहाँ से हटाकर उस मकान में ले गया जहाँ वह आजकल रहती है। प्रारम्भ में नये-नये अजनबी गाहकों से मिलने और उनसे बातें करने में उसे बड़ा संकोच होता था। वह जैसे जमीन में गड़ी जाती थी। धीरे-धीरे उसे आदत पड़ गई और उसमें ढिठाई आने लगी। पर उसने देखा कि कोठेवालियों के जिस सुख और स्वच्छन्द जीवन की कल्पना उसने कर रखी थी वह वास्तविकता से कोसों दूर है। अपने को बेचकर भी तंगहाल रहती हैं और इच्छानुसार भोजन तक का प्रबन्ध नहीं कर पातीं, गाहकों से जो कुछ मिलता है वह प्रायः सब दलालों की दलाली, कमरे का किराया, नौकर का वेतन और अनिवार्य रूप से आवश्यक शृंगार-सामग्री खरीदने आदि में खर्च हो जाता है और अपने भोजन का प्रबन्ध करने के लिये उन्हें कर्ज करने तक को बाध्य होना पड़ता है ! यह उन लोगों का हाल है जिनके ऊपर किसी नायिका का बन्धन नहीं है। जो बेचारियाँ नायिकाओं के अधीन रहकर पेशेवर जीवन बिताने को बाध्य हैं उनकी दुर्गति तो अकथनीय रूप से भयंकर है। उन्हें गाहकों के हाथ अपनी शरम-धरम, अस्मत-आबरू सब कुछ बेचकर जो पैसे मिलते हैं उन्हें पाई-पाई करके नायिकाएँ खसोट लेती हैं और बदले में उन्हें जीने भर तक की पर्याप्त सुविधा नहीं देतीं।

पर जल्दी ही उसे यह अनुभव हुआ कि जो अभागिनियाँ श्यामलाल की तरह के कफ़न-खसोट गुण्डों के फँदों में फँसी होती हैं उनकी दशा सबसे अधिक दयनीय है। प्रारम्भ में वह श्यामलाल के हाथ में चुपचाप सब रुपये थमा देती थी। वह उससे इस कदर तंग आ गई थी कि उससे झगड़ना और बहस करना नहीं चाहती थी। इतना वह जरूर सोचती थी कि चाहे वह कितना ही बड़ा लफंगा और कमीना क्यों न हो, उसके प्रतिदिन

की अनिवार्य आवश्यकता की पूर्ति अवश्य ही करेगी; उसके प्रति दया करके नहीं बल्कि अपनी गरज से। पर उसने देखा कि वह नराधम उसके सुबह और शाम के भोजन के बारे तक में लापरवाह है, तब उसने गाहकों से मिलने वाले पैसों में से कुछ चुराकर रखना आरम्भ किया। श्याम-लाल के जरिये से गाहक से जितना रुपया तय होता था उसके अलावा कुछ और पैसा देने के लिये वह गाहक के आगे, श्यामलाल के पीछे, गिड़-गिड़ाती थी। कभी-कभी तो वह गाहक के आगे रो भी पड़ती थी। दया-वश हो या अपनी जान छुड़ाने के लिये ही, अधिकांश गाहक तय की गई रकम से कुछ अतिरिक्त उसे दे देते थे। वह उन अतिरिक्त पैसों को अंटी में छिपा लेती थी। प्रारम्भ में कुछ दिनों तक श्यामलाल को उन अतिरिक्त पैसों का पता न चला। पर एक दिन जमुना की अंटी से एक अठन्नी नीचे गिर पड़ी, तब से प्रतिदिन वह उसकी नंगाझोरी लेने लगा और अतिरिक्त पैसों को भी बलपूर्वक झटकने में कोई बात उठा न रखता। जमुना रोती, गिड़गिड़ाती, आत्मघात कर लेने की धमकी देती, पूरी ताकत से प्रतिरोध करती, पर वह पिशाच तनिक भी न पिघलता और अपनी हरकतों से बाज न आता। फल यह हुआ कि उसका स्वास्थ्य दिन ब दिन गिरता चला गया। भरी जवानी में उसके तन का और मन का सारा सत्व निचुड़ गया। सारा रस सूख गया। प्रेतों की तरह उसकी आकृति हो गई। साल भर पहले जब उसने उस बच्ची को जन्म दिया था, जो आज बीमारी से बेहोश पड़ी थी, तब से उसकी वह प्रेताकृति और भयंकर हो गई और वह केवल हड्डियों का चलता-फिरता ढाँचा रह गई। श्यामलाल से प्रतिदिन उसकी चख-चख चलती रहती थी। वह पाई-पाई उससे छीनकर कुछ तो शराब पीने में खर्च करता था और शेष एक प्रेमिका को दे देता था। आज जो घटना हुई वह कोई नयी नहीं थी। जमुना उसकी आदी हो चुकी थी। पर आज उसके शरीर से भी अधिक उसके मन पर श्यामलाल के व्यवहार से जो खरोंच लगी उसका कारण था। उसने श्यामलाल को एक दिन सच्चे मन से चाहा था। बाद

में उसके नीच व्यवहार से उसका मन उसकी ओर से खट्टा हो जाने पर भी अपने अनजान में उसे यह विश्वास था कि जब वह दुर्गति की चरम सीमा को पहुँच जायगी तब उसके लिये श्यामलाल ही संसार में अकेला ऐसा प्राणी सिद्ध होगा जो उसका साथ देगा। वह दुर्गति की जिस सीमा तक पहुँच चुकी थी वह चरम के ही निकट थी, और वह जानती थी कि यदि वह उस चकले में सड़-गलकर भूखों मरने लगे तो कोई उसकी ओर आँख उठाकर देखने वाला भी वहाँ नहीं है। क्योंकि जो कोठेवालियाँ अपने को बेचकर किसी तरह अपने जीवन का कष्टमय भार ढोये चली जा रही हैं उन्हें स्वयं अपनी ही कल की चिन्ताओं से अवकाश नहीं है, दूसरों की दुर्गति पर रोने की फ़ुर्सत उन्हें कहाँ! इसलिये वह सोचती थी कि श्यामलाल चाहे कैसा भी पशु, कितना ही विकट नराधम क्यों न हो, आख़िर एकमात्र वही तो वहाँ उसका अपना कहने को है! पर आज जब उसने देखा कि उसकी बच्ची की मरणासन्न दशा और स्वयं उसकी रुग्ण और निराहार अवस्था देखकर भी श्यामलाल बच्ची के इलाज के लिये डाक्टर बुलवाना और उसे दिलासा देना तो दरकिनार उलटे उसे मार-पीटकर उसका कफ़न तक खसोटने से बाज नहीं आया, तब वह सारे विश्व में अपने को एकदम अनाथ, असहाय और निपट अकेली जानकर आतंक से सिहर उठी थी। उसका कोई भी अपना नहीं रह गया था—यह तथ्य ज्वलंत सत्य की तरह उसकी आँखों के आगे नाचने लगा था।

उसे बैठे-बैठे बहुत देर हो गई है। नीचे गली में लोगों का आना-जाना कम होता जा रहा है। इच्छा-शक्ति का पूरा जोर लगाने पर भी वह बीच-बीच में बरबस ऊँघने लगती है और फिर-फिर चौंक उठती है। कुछ ही सेकंडों की ऊँघाई में वह अजीब-से अस्पष्ट दुःस्वप्न देखने लगती है, जिनका केवल आतंकजनक आभासमात्र जगने पर उसके मन में शेष रह जाता है। एक बार वह देखती है कि वह और बच्ची अकूल समुद्र में

बहते हुए मगरों के जबड़ों से किसी तरह बचते हुए सहसा नीचे अतल की ओर डूबते चले जाते हैं। वह हाथ-पाँव ऊपर को करने के प्रयत्न में छटपटाती है पर उसके उद्धार के लिये कोई आता है तो केवल एक भीषण दाढ़ों वाला दूसरा मगर। वह चिल्लाकर अपना हाथ खींचने लगती है और उसके छटपटाने से बच्ची उसके हाथ से छूटने लगती है। वह फिर उसे पकड़ने के लिये और अधिक गहराई में गोता लगाती है। इतने में उसके कानों में आवाज़ आती है, "अच्छा स्वांग रचा है!" वह चौंककर आँखें मलती हुई ठीक से बैठ जाती है। देखती है कि सामने कोयले से भी काला एक दैत्याकार आदमी एक लम्बी-सी लाठी हाथ में लिये खड़ा है और अपनी मूँछों के नीचे विचित्र ढंग से मुस्करा रहा है। वह एक सफेद बंडी और सफेद ही लुंगी पहने है। क्षणभर के लिये जमुना को लगता है कि वह अभी तक स्वप्न ही देख रही है पर जब वह ैत्य मुस्कान-भरी विचित्र मुद्रा बनाकर कहता है, "कहिये बाईजी, अंदर चलियेगा ?" तब उसे विश्वास होता है कि वह जगी है। वह बिना कुछ सोचे चुपचाप उठ खड़ी होती है और फिर धीरे से उस आदमी से, जिसका ढाँचा पहलवानों का-सा लगता है, कान के पास कहती है, "चलिये।"

गिरती-पड़ती हुई-सी वह पहलवान को लेकर छत पर चलती है। धुँआती हुई लालटेन की कालिख से काली चिमनी के भीतर से शैतान की आँख की तरह लाल बत्ती अभी तक किसी तरह जल रही है। स्पष्ट ही तेल चुक गया है और केवल बत्ती का कपड़ा जल रहा है। उस धुँधलके में वह एक बार खटिया पर पड़ी बच्ची की ओर देखती है। बच्ची उसी तरह बेहोश-सी पड़ी है। वह एक बार बच्ची के एकदम निकट झुकती है। बच्ची आँखें बन्द किये है। उसकी साँस बहुत तेज़ चल रही है। बीच-बीच में एक अस्फुट कराह उसके मुँह से निकलती है। जमुना एक बार हलके हाथों से उसकी पीठ थपथपाती है और बरबस उमड़ते हुए आँसुओं को पी जाने का भरसक प्रयत्न करती है। फिर भी आँखें

गीली हो जाती हैं। वह चुपके से आँचल से आँखें पोंछ लेती है। पहलवान कमरे के भीतर दरवाज़े के पास ही खड़ा है। वह उसके आगे अपने आँसुओं को प्रकट नहीं होने देना चाहती।

"आइये, बैठिये!" अपने प्रेत-मुख पर बरबस मुसकान का आभास झलकाने का प्रयत्न करती हुई वह कहती है। पहलवान लाठी को दीवार के एक कोने के सहारे खड़ा करके दूसरी खटिया पर बैठ जाता है। जमुना भीतर से किवाड़ बंद कर देती है।

पहलवान को बाहर निकले दो मिनट भी नहीं होते कि श्यामलाल भीतर पहुँच जाता है और जमुना फर्श पर बिछी हुई एक मैली दरी के ऊपर हाथ-पाँव फैलाकर प्रायः अधमरी-सी अवस्था में लेटी है। बुझती हुई बत्ती के बहुत ही जीर्ण प्रकाश में श्यामलाल कुछ क्षणों तक उसके उस भयावने रूप की ओर देखता रह जाता है। आतंक की एक ठंडी सिहरन क्षणभर के लिये उसकी रीढ़ से होकर दौड़ जाती है। पर फिर दूसरे ही क्षण अपनी उस भावना को झाड़ फेंकता है और फर्श पर जमुना के निकट उकड़ूँ बैठकर वह कहता है, "ला, पहलवान ने क्या दिया तुझे? मैंने ही उसे तेरे पास भेजा था। मुझे इस समय रुपयों की सख्त ज़रूरत है। चुपचाप से मेरे हाथ में दे दे। मैं तुझसे आज फिर कुछ नहीं माँगूंगा। इसके बाद वाला गाहक तुझे जो कुछ देगा उसे तू ही रख लेना। उसमें से मैं एक पैसा भी नहीं लूंगा। जल्दी दे।" वह अपेक्षाकृत नम्र स्वर में कहता है और हाथ से उसे हिलाने लगता है।

जमुना चौंककर उठ बैठती है। स्पष्ट ही वह इतनी देर तक या तो बेहोशी की-सी हालत में पड़ी थी या खोयी हुई थी। कमरे के क्षीण प्रकाश में श्मामलाल को देखते ही वह बौखला उठती है। उसकी सारी मानसिक और शारीरिक थकावट पलभर के लिये लुप्त हो जाती है। सिरहाने के नीचे रखे हुए रुपयों को अन्टी में छिपाकर वह पूरी ताकत से चिल्लाकर कहती है, "तुम फिर आ गये? यहाँ से इसी क्षण चले

जाओ, नहीं तो मैं तुम्हारा बड़ा बुरा हाल कर दूंगी ।" और उठकर अलग खड़ी हो जाती है।

श्यामलाल का स्वर फिर कठोर हो जाता है। वह दाँतों को किटकिटाता हुआ लपककर उसके पास जाता है और उसकी अन्टी टटोलने का प्रयत्न करता है। उसके मुँह से कच्ची शराब की तीव्र गंध आ रही है।

"मैं यह रुपये हरगिज नहीं दूंगी ! हरगिज नहीं दूंगी !" वह चीखती हुई रोने के-से स्वर में कहती है। "इन्हें मैंने बच्ची की दवा-दारू और डाक्टर की फीस के लिये रख छोड़ा है !"

वह उसके दोनों हाथों को अपने बायें हाथ की मुट्ठी से कसकर पकड़ लेता है और दाहिने हाथ से उसकी अन्टी से रुपये निकालने का प्रयत्न करता है। वह छटपटाती है, अपने दाँतों को उसके बायें हाथ पर गड़ाकर पूरी ताकत से काटती है। पीड़ा के कारण एक धीमी-सी कराह श्यामलाल के मुँह से निकलती है, पर फिर भी वह मुट्ठी नहीं छोड़ता। वह काट-काटकर उसके हाथ से खून निकाल देती है पर कोई फल नहीं होता। अन्त में वह उसके हाथों को छोड़ देती है। वह नाखूनों से उसका मुँह नोचने लगती है पर तब तक श्यामलाल उसकी अन्टी से रुपये निकाल लेता है। वह दौड़कर उसपर झपटती है पर वह कमरे से बाहर निकलकर बाहर से साँकल चढ़ाकर अट्टहास करता है। चिल्लाकर कहता है, "पहलवान बड़े-बड़े बाबुओं से भी दरियादिल निकला। दस रुपये दिये उसने पूरे दस ! कच्ची पीकर तबीयत खराब हो गई थी, अब जाकर 'थ्री एक्स' पीऊँगा। शिब्बन के यहाँ अब भी मिल जायगी, एक रुपया ज्यादा देकर ! हा : हा : ! रातभर बन्द रहो। आराम करो, बहुत थक गई होगी···"

जमुना भीतर से दरवाज़े पर पूरी ताकत से हाथ से धक्के देती रहती है। और चिल्लाती है, "शैतान, जल्दी खोल दरवाजा, जल्दी खोल ! मेरे रुपये वापस कर दे ! बच्चे पर रहम कर !" और वह गुहार मारकर रोने लगती है।

बहुत देर तक वह इसी तरह रोती हुई किवाड़ पर धक्के देती रहती है, पर न कोई उत्तर मिलता है न दरवाज़ा खुलता है। वह अपना सिर किवाड़ पर पटकने लगती है, पर किवाड़ को रहम नहीं आता। अन्त में थक-कर वह फर्श पर पछाड़ खाकर गिर पड़ती है। काफी देर तक उसी अवस्था में पड़ी रहती है। उसके बाद सहसा उठकर लड़खड़ाते हुए पाँवों से उस खटिया पर जाती है जहाँ बच्ची पड़ी है। किसी तरह उसकी बगल में जाकर लेट जाती है। पिछले कुछ घन्टों के सारे चक्कर से अपने को इस कदर थकी हुई महसूस करती है कि उसे लगता है उसे मूर्च्छा आ जायगी। उसे सब कुछ घूमता हुआ-सा मालूम होता है। लालटेन की बत्ता की लौ धीरे-धीरे बुझती जा रही है। उसे नींद मालूम होने लगती है। आँखें झपने लगती हैं और वह सो जाती है।

काफी देर बाद जब एक दुःस्वप्न देखने के कारण उसकी नींद उचटती है तब वह बच्ची की ओर करवट बदलती है। अभ्यासवश अन-मने भाव से बच्ची की पीठ थपथपाती जाती है, जैसे उसे सुला रही हो। उसके थके हुए निःशक्त शरीर और अशक्त मन पर नींद का खुमार अभी तक ऐसा छाया है कि बच्ची देर से मरी हुई पड़ी है इसकी कुछ सुध ही उसे नहीं है। वह अभ्यासवश उसकी पीठ थपथपाती हुई लोरी के स्वर में कहती जाती है, "आ-आ ऽ! आ-आ ऽ! आ-आ ऽ! आ ऽ ऽ ऽ!"

प्लैनचेट

लाला शंकरदयाल अपने शहर के एक प्रसिद्ध वकील थे। उनकी पत्नी ब्रजेश्वरी की मृत्यु प्रायः चार मास पहले हुई थी। तब से वकील साहब के मन की दशा शोचनीय हो उठी थी। वह सब समय चिन्ताग्रस्त दिखाई देते थे और लोगों से मिलना-जुलना उन्होंने प्रायः छोड़ दिया था। जो कोई भी मुवक्किल उनके पास आता था उसे वे टरका देते थे। अपने मित्रों के आगे भी उन्होंने ऐसी उदासीनता का रुख अख्तियार कर लिया था कि वे भी धीरे-धीरे उनसे दूर रहने की बात सोचने लगे थे। वह दिन भर अपने मकान में बन्द पड़े रहते और शाम को जब अच्छी तरह अंधेरा हो जाता तो एक-आध घंटे के लिये अकेले किसी निर्जन स्थान में टहलने के लिये बाहर निकलते। सब समय चौबीसों घंटे ज्ञात में या अज्ञात में वह केवल अपनी मृत पत्नी की ही बात सोचते रहते। सोचते-सोचते कभी-कभी वह ऐसे भाव-विह्वल हो उठते कि उनकी आँखों से बरबस टपाटप आँसू गिरने लगते। लाख कोशिश करने पर भी वह उन आँसुओं को रोक न पाते। ऐसी मानसिक दशा में वह प्रायः दस-पन्द्रह मिनट तक आँसू गिराते रहते। जब वह भावावेश में अपने आप समाप्त हो जाते तो उन्हें कुछ समय के लिये बहुत चैन मिलता।

ऐसी बात नहीं थी कि वह अपने मन की उस असाधारण दशा के खतरों से परिचित न हों। वह भली भाँति जानते थे कि यदि उनके मन की वह एकान्तप्रिय भावमग्न दशा कुछ समय तक और रही तो वह पागल तक हो सकते हैं पर उस असाधारण मानसिक अवस्था से, आप चाहे मोहाच्छन्नता कहें चाहे भावमग्नता, छुटकारा पाने में वह अपने को एकदम असमर्थ पाते थे।

आश्चर्य की बात सबसे अधिक यह थी कि जब तक उनकी पत्नी जीवित रही तब तक कभी वह उसके सम्बन्ध की किसी भी बात को लेकर विशेष चिन्तित नहीं रहे और उसके अस्तित्व के सम्बन्ध में एक प्रकार से उदासीन-से ही रहे। ब्रजेश्वरी की मृत्यु के पूर्व कुछ महीनों से वह उसका इलाज डाक्टरों से करवा रहे थे। पर उन्हें यह विश्वास हो गया था कि जिस भीतरी रोग ने उसे पकड़ लिया है उससे वह बच नहीं सकती और जल्दी ही ऐसा दिन आने वाला है जब वह इस संसार के समस्त बन्धनों से सम्बन्ध तोड़कर किसी अदृश्य लोक में चली जायेगी। यह सब जानने पर भी उनके मन में इस बात को लेकर कोई आतंक-जनक कल्पना नहीं हुई।

पर पत्नी की मृत्यु के बाद वकील साहब को जैसे अकस्मात् उसकी प्रेतात्मा ने धर दबाया हो। वह प्रेतात्मा सब समय जैसे उनके पीछे-पीछे चलती-फिरती रहती थी, जब वह साँस लेते थे तो जैसे उनके साथ वह भी साँस लेती थी, वह बैठते थे तो वह भी बैठती थी, वह उठते थे तो वह भी उठती थी, और वह सोते थे तो वह भी जैसे उनके सिरहाने पर बैठकर रात भर ठंडी आहें भरती हुई जागती रहती थी।

वकील साहब आध्यात्मिक विषयों पर श्रद्धा रखते थे। वर्षों से वह प्राच्य और पाश्चात्य दर्शन से सम्बन्ध रखने वाले ग्रन्थों का अध्ययन बड़ी दिलचस्पी से करते आ रहे थे। वकालत से अवकाश पाने पर यदि किसी विषय की चर्चा उन्हें प्रिय लगती थी तो वह था दर्शन और अध्यात्म-तत्व। पर जब से ब्रजेश्वरी उनसे सदा के लिये बिछुड़ गई तब से उनकी दिलचस्पी प्रेतात्मविद्या की ओर बढ़ने लगी। वह दर्शन-वर्शन सब भूल गये और इस बात से भी उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं रही कि जीवात्मा का परमात्मा से क्या सम्बन्ध है। अब वह एकमात्र इस चिन्ता में मग्न रहने लगे कि परलोकगत आत्माओं से वार्त्तालाप किस उपाय से किया जा सकता है। इस बात पर उनका विश्वास दिन-प्रतिदिन दृढ़ से दृढ़तर होता जाता था कि यदि किसी व्यक्ति में सच्ची धुन और पक्की लगन हो

तो वह निश्चय ही किसी भी परलोकगत आत्मा को अपने पास बुला सकता है और उसके साथ जी खोलकर बातें कर सकता है। इधर कुछ समय से वह रात-दिन प्रेतात्मविद्या-सम्बन्धी पुस्तकों के अध्ययन में रत रहते थे और साथ ही विदेशों के प्रमुख प्रेतात्मवादियों से लिखा-पढ़ी करके इस विषय से सम्बन्धित बहुत-सी गूढ़ और महत्वपूर्ण बातें जानने की चेष्टा में रहते थे।

धीरे-धीरे इस विषय का ज्ञान उन्होंने इस हद तक बढ़ा लिया कि स्वयं अपने हाथ से वह बिलकुल नये ढंग का प्लैनचेट तैयार करने के काम में जुट गये। प्लैनचेट को उन्होंने ऐसे तीव्र नुभूतिशील वैद्युतिक और चुम्बकाकर्षणयुक्त पदार्थों से निर्मित किया जो सूक्ष्म से सूक्ष्म और हल्के से हल्के तडित् प्रवाह को बड़ी आसानी से पकड़ सकते थे। कम से कम वकील साहब को ऐसा ही विश्वास था कि वह प्लैनचेट निश्चय ही अदृश्य प्रेतात्माओं के अति सूक्ष्म स्पन्दनों को भी बहुत दूर से खींचकर अपने भीतर बाँध लेगा।

वह उस प्लैनचेट को नित्य रात में सोने के समय अपने सिरहाने के पास तैयार अवस्था में रख देते थे। उन्हें यह विश्वास था कि उनकी पत्नी की जो परलोकगत आत्मा अदृश्य छायामय रूप में नित्य उनके पीछे-पीछे विचरण करती फिरती है वह प्लैनचेट द्वारा निश्चय ही एक न एक दिन अपने परलोक-प्रवास के जीवन पर प्रकाश डालेगी। दूसरे प्रकार के प्लैनचेट में परलोकगत आत्माओं को बुलाने के लिये जिस प्रकार ऊपर हाथ रखने की आवश्यकता पड़ती है लाला शंकरदयाल के मत में उनके अपने हाथ से तैयार किये हुए उस विशेष 'प्लैनचेट' में उस बात की कोई आवश्यकता न थी। जैसा कि कहा जा चुका है उसे विद्युत और चुम्बक तत्वों से इतना अधिक सतेज और प्राणवाही बना दिया गया था कि वह अपने आप बिना किसी हाथ की सहायता के प्रेतात्माओं के संकेतों को ग्रहण करके लिपिबद्ध कर लेगा, ऐसी वकील साहब की धारणा थी।

वह नित्य उससे प्रयोग करते जाते थे। प्रतिदिन उसे अधिकाधिक अनुभूतिशील बनाने की चेष्टा में रहते थे और प्रतिदिन उसे अपने सिरहाने के पास रखकर इस प्रत्याशा में सोने की तैयारी करते कि सम्भवतः उनकी पत्नी की प्रेतात्मा उसके माध्यम से अपना कुछ हाल उन्हें बता जाय। उनका यह खयाल था कि प्रेतात्माएँ व्यक्तियों के सोनें के समय ही विशेषरूप से अपने को प्रकट करना पसन्द करती हैं।

वकील साहब बहुत दिनों तक बड़े अधैर्य से रात-रात भर अर्द्धनिद्रावस्था में अपनी पत्नी की प्रेतात्मा का कोई संकेत पाने की प्रतीक्षा करते रहे, पर उनकी आशा पूरी न हुई। अन्त में एक दिन वह बड़ी निराश अवस्था में प्रायः बारह बजे रात के समय अपने पलंग पर सोने के इरादे से लेटे। उनकी आँखें कुछ झपने लगी थीं कि इतने में पास ही कहीं से सहसा किसी ने हारमोनियम बजाकर अपने मोटे गले से आलापबाजी शुरू कर दी। उससे उनकी नींद उचट गई। वह तरह-तरह की चिन्ताओं में मग्न होकर लेटे ही थे कि कुछ समय बाद अचानक उन्हें सिरहाने पर रखे हुए प्लैनचेट में खसर-खसर-सी आवाज सुनाई दी। वह बड़े जोर से कान लगाकर सुनने लगे। यह आवाज़ स्पष्ट से स्पष्टतर होती जाती थी और उसका क्रम एक नियमित गति से चल रहा था। उनकी निगाह प्लैनचेट की ओर गई। अंधेरे में उन्होंने देखा कि सफेद चादर ओढ़े हुए एक छाया-मूर्ति जो कद में उनकी स्वर्गीया पत्नी ब्रजेश्वरी के ही बराबर मालूम होती थी वहाँ पर खड़ी प्लैनचेट के नीचे रखे हुए काग़ज़ पर जल्दी-जल्दी कुछ लिख रही थी। वकील साहब के हर्ष का कुछ ठिकाना न रहा। उनकी बहुत दिनों की आशा आज चरितार्थ होने जा रही थी। वह चुपचाप इस बात की प्रतीक्षा में लेटे रहे कि छाया-मूर्ति लिख चुकने के बाद वहाँ से हटे तो जाकर पढ़ें कि उसने क्या लिखा है।

उन्हें ऐसा लगा कि काफी देर बाद वह छाया-मूर्ति वहाँ से विलीन हो गई। उसके अन्तर्धान होते ही वकील साहब पलंग पर से उठ खड़े हुए और प्लैनचेट के नीचे जो बहुत-से काग़ज़ उन्होंने दबाकर रख छोड़े थे

उनमें प्रेतात्मा ने वास्तव में कुछ लिखा है या नहीं और अगर लिखा है तो क्या लिखा है यह जानने के लिये वह बत्ती जलाने के उद्देश्य से दियासलाई खोजने लगे। वह दियासलाई खोज ही रहे थे कि अचानक उन्हें प्लैनचेट के नीचे के कागज की लिखावट उस अन्धकार में रेडियम की घड़ी के अंकों की तरह स्वतः प्रकाश से जगमगाती हुई मालूम हुई। वह लपककर प्लैनचेट के पास गये और काग़ज़ के जिन टुकड़ों पर प्रेतात्मा ने अपना वक्तव्य लिखा था उन्हें उठाकर बड़ी अधीरता से खड़े-खड़े पढ़ने लगे। प्रेतात्मा ने लिखा था—

"मेरे मर्त्यलोक के भूतपूर्व पति महाशय, मुझे मालूम हो गया है कि आप मेरे मरने के बाद मेरे लिये किस कदर बेचैन हैं और मेरी चिन्ता में दिन पर दिन घुलते चले जाते हैं। आपकी बेचैनी मुझे बरबस प्रेतलोक से खींचकर आपके पास ले आई है। आप यह जानने के लिये स्वभावतः उत्सुक हैं कि मरने के बाद मैं किस लोक में हूँ और किस समाज के बीच में कैसा जीवन बिता रही हूँ।

"महाशय! हम लोगों का जीवन ही क्या हो सकता है, हम तो केवल अशरीरी छाया हैं किसी विगत जीवन की अनुभूतियों की स्मृतियों के सूक्ष्म संकेत-चिह्नों के अतिरिक्त हम और कुछ नहीं हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वर्त्तमान में भी मर्त्यलोक के भूतपूर्व निकट सम्बन्धियों की तीव्र अनुभूतियों के विद्युत-स्पन्दन हम लोगों की अति चेतना से आकर कभी-कभी टकरा जाते हैं पर उनसे हमें न कोई विशेष सुख होता है न दुःख। कारण यह है कि अनुभूतियों की सुख-दुःखमयी चेतना शरीर के माध्यम से ही हो पाती है और हम हैं कोरी छाया—केवल छाया। पर विगत स्मृतियों की चेतना हमारे छाया-प्राणों में अभी तक कुछ न कुछ दोलन पैदा करती ही रहती है। इसलिये आज आपके आगे इस प्लैनचेट के माध्यम द्वारा मैं अपने मर्त्यलोक के जीवन की कुछ ऐसी स्मृतियों का उद्घाटन करना चाहती हूँ जिन्हें मैंने मरते दम तक आपके आगे एकदम गुप्त रखा था और जिनका क्षीणतम आभास भी आपके सम्मुख प्रकट नहीं होने दिया था।

"आपके मन में मेरे मरने के बाद यह भ्रान्त धारणा घर कर गई है कि आप मुझे आजीवन बहुत चाहते रहे हैं। पर वर्त्तमान की भ्रांति को झाड़कर यदि आप अपनी स्मृति को एक बार अच्छी तरह टटोलें और हम दोनों के विगत जीवन पर एक बार ध्यानपूर्वक विचार करें तो आपको याद आवेगा कि आप मेरे अत्यन्त निकट रहने पर भी मुझसे कितने दूर रहते थे। पहले तो आपको कोर्ट के कामों से ही फुर्सत नहीं मिलती थी और जो थोड़ा-बहुत अवकाश मिलता भी था, उसे आप या तो अपने मित्रों के संग राजनीतिक या दार्शनिक चर्चा में बिता दिया करते थे या बड़े-बड़े ग्रन्थों के अध्ययन में। मेरे साथ सुख-दुःख की बातें करने, मेरी अन्तराकांक्षाओं से परिचित होने या मुझे किसी भी रूप में अपने जीवन की संगिनी के बतौर मानने की चिन्ता आपके मन में कभी उत्पन्न नहीं हुई। रात के समय कभी-कभी आप मुझसे मिल लेते थे, सन्देह नहीं, पर आपका वह मिलन अपनी सहधर्मिणी, अपनी अर्द्धांगिनी, अपनी सहचरी के साथ न होकर; अपनी अनुचरी, अपनी रखेली, अपनी भोगेच्छापूर्ति की साधन-रूपिणी के साथ था।

"मैं मानती हूँ, आप इस बात के लिये सदा प्रयत्नशील रहते थे कि मेरे लिये रुपये-पैसे, गहने-कपड़े, खान-पान आदि सुख-साधनों की कोई कमी न रहने पावे। पर क्या नारी की आत्मा के रीते कोठे को इन पार्थिव उपायों से तृप्त किया जा सकता है। मेरे मरते दम तक यह बात आपकी समझ में न आई कि आपके साथ में दुकेली होते हुए भी अकेली ही थी, सधवा होते हुए भी विधवा थी। आश्चर्य है, दुनिया भर के अच्छे-बुरे सभी प्रकार के लोगों की तरफ से आप वकालत करते थे पर मेरी तरफ से अपने ही आगे वकालत करने की फुर्सत आपको नहीं थी।

"आपको मालूम है, हमारे पड़ोस में एक कीर्तन-मंडली थी। घर में दिन भर अकेलेपन के हाहाकार से घबराकर मैं प्रायः प्रतिदिन दोपहर के समय वहाँ जाया करती थी। वहाँ भक्त नारी-मंडली के साथ मैंने भगवान् के चरणों में लौ लगानी शुरू कर दी। जिन भगवान् ने अपनी किशोर-लीला के अनगिनत रूप दिखाकर ब्रज में प्रेम की बाढ़ बढ़ा दी

थी उनकी आराधना में अपने सारे मन को सारी आत्मा को डुबा देने की पूरी चेष्टा में मैं लग गई। आरम्भ में कुछ समय तक मुझे ऐसा लगा कि मैं विशुद्ध आध्यात्मिक प्रेम के लोक में पहुँचकर भगवान् के अत्यन्त निकट जा पहुँची हूँ। लौकिक प्रेम के अभाव की पूर्ति अलौकिक प्रेम से होते देखकर भीतर ही भीतर मैं एक समुन्नत गर्व की भावना से फूली नहीं समाती थी। पर मेरे उस गर्व को चूर करने के लिये शीघ्र ही एक व्याघात आ खड़ा हुआ। ऊपरी नियम और संयम के नीचे मेरे भीतर जो दुर्बलता दबी पड़ी थी उसके उघाड़ होने की नौबत आ गई।

"वह कीर्तन-मंडली दो भागों में बँटी हुई थी; एक स्त्री भक्त-समाज और दूसरा पुरुष भक्त-समाज। साधारण अवसरों पर स्त्री-समाज का कीर्तन दिन में होता था और पुरुष-समाज का रात में। पर कुछ विशेष धार्मिक तिथि-त्यौहारों के अवसरों पर पुरुष-स्त्रियाँ दोनों कीर्तन में साथ ही भाग लेते थे। दोनों के बीच में केवल पतली चिक का एक झीना-सा व्यवधान रहता था। जो महाशय पुरुष कीर्तन-समाज के मुखिया थे वह अधेड़ अवस्था के एक सीधे-सादे व्यक्तित्वहीन व्यक्ति थे। उन्होंने अकस्मात् किसी कारण से आना बन्द कर दिया या वह बीमार पड़ गये थे या शहर छोड़कर किसी दूसरे स्थान में चले गये थे। जो भी हो, उनके स्थान पर जिन नये महाशय ने पुरुष-मंडली का नेतृत्व ग्रहण किया उनकी अवस्था तीस वर्ष से अधिक न रही होगी। वह देखने में अत्यन्त स्वस्थ और सुन्दर लगते थे और उनका व्यक्तित्व विशेष आकर्षणशील था। वह जाति के ब्राह्मण थे और उनका नाम राधामोहन शर्मा था। जब वह भाव-मग्न होकर अधमुँदी आँखों में मोहकता झलकाते हुए गाते थे तो देखने और सुनने वालों पर बड़ा असर पड़ने लगता। मैं भरसक प्रतिरोध करने लगी और उनके व्यक्तित्व के प्रति उदासीन रहने का पूरा प्रयत्न करने लगी। पर मेरे साथ प्रयत्नों का परिहास करते हुए उनकी मोहकता मुझे जैसे बरबस भूत की तरह दबाती चली जाती थी।

"आरम्भ में मैंने अपने मन की इस अवस्था को एक साधारण-सी बात

समझकर उसे कोई महत्व ही नहीं देना चाहा। पर धीरे-धीरे मेरे अन-जान में—या जान में—इस बात को लेकर मेरा मन अस्थिर होता चला गया और एक अनोखी बेचैनी मेरे भीतर समा गई जो एक क्षण के लिये भी मेरा साथ नहीं छोड़ना चाहती थी। मेरी भक्ति-भावना एक दूसरे ही मनोभाव के रूप में बदल गई। जब मैं कीर्तन के समय या घर पर एकान्त ध्यानावस्था के क्षणों में कृष्ण का ध्यान करने लगती तो उनकी साँवरी-सलौनी छवि मेरे मन की आँखों के आगे राधामोहन शर्मा के रूप में बदल जाती। मैं इस भाव को भयंकर पाप समझकर कितना ही छटपटाती, अपने चंचल मन के साथ भयंकर लड़ाई लड़ती, पर मेरे सब प्रयास निष्फल जाते। राधामोहन शर्मा किसी प्रकार मेरे मन से हटते ही न थे। मुझे ऐसा जान पड़ने लगा कि मैं इस तरह पागल हो जाऊँगी और इस प्रकार की कलुषित भावना को मन में पोषित करने की अपेक्षा मैंने आत्महत्या कर लेना बेहतर समझा। पर मेरा युग-युग व्यापी हिन्दू संस्कार आत्महत्या को उससे भी भयंकर पाप समझता था, इसलिये उसके लिये भी हिम्मत नहीं पड़ती थी। मैंने कई बार सोचा कि अपने मन के उस द्वन्द्व को आपके आगे व्यक्त करके अपने जी का भार हल्का करूँ और आपसे हाथ जोड़-कर यह प्रार्थना करूँ कि किसी उपाय से इस घोर पाप से बचाइये। पर अपने, विशेषकर अपने मन के भावों के प्रति आपकी निपट अवज्ञा देख-कर आपसे इस सम्बन्ध में कुछ भी कहने का साहस मुझे नहीं होता था।

"जिस प्रकार पुरुष-समाज के कीर्तन-परिचालक वह थे उसी प्रकार स्त्री-समाज की परिचालिका मैं थी। इसलिये जब चिक के परली पार उनकी दृष्टि जाती होगी तो वह निश्चय ही मेरे प्रत्येक मुद्रा पर गौर करते होंगे। जब से मैं उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुई तब से न चाहने पर भी गाते समय मेरे मन में यह ध्यान प्रतिक्षण रहता कि राधामोहन जी चिक के उस पार से मेरी ओर देख रहे हैं और मेरा गाना सुन रहे हैं। इसलिये मैं बरबस अपने सुर को अधिक आकर्षक बनाने के प्रयत्न में दत्तचित रहती।

"एक दिन उनके घर की स्त्रियों ने, जिनमें एक उनकी पत्नी और दूसरी उनकी विधवा बहन थी, किसी पुण्य अवसर पर अपने घर में अखंड कीर्तन कराने का निश्चय किया और दूसरी स्त्रियों के साथ मुझे भी आमन्त्रित किया। निमन्त्रण के दिन जब मैं राधामोहन के यहाँ गई तो वह दरवाजे पर हम लोगों के स्वागत के लिये स्वयं खड़े थे। अपनी भाव-पूर्ण आँखों में स्निग्ध मुस्कान का संयत आभास झलकाते हुए उन्होंने मेरी ओर देखा। उनकी उस दृष्टि में मुझे एक ऐसी निराली प्रीति की अन्त-र्वेदना छिपी जान पड़ी जिसने सीधे मेरे मर्म में जाकर चोट पहुँचाई। उस दिन हम दोनों ने पहली बार एक दूसरे को आमने-सामने बिना किसी चिक के व्यवधान के देखा था। इसलिये वैद्युतिक चुम्बक की सूक्ष्म तरंगें किसी रोक-टोक के बिना एक दूसरे की आत्मा के साथ सीधी टकराने लगीं। केवल क्षण भर के लिये उनसे मेरी चार आँखें हुई होंगी, उतने ही में किसी अज्ञात रहस्यमयी शक्ति के जादू ने एक अनन्तव्यापी मोहजाल हम दोनों के आगे फैला दिया—मुझे ऐसा लगा।

"जब मैं भीतर जाकर कीर्तन-मण्डली के बीच में बैठी तो मेरी आत्मा का एक-एक सूक्ष्म से भी सूक्ष्म परमाणु राधामोहन-राधामोहन की रट लगाने लगा। उनका राधामोहन नाम भी जैसे किसी दैवी चक्र ने रख दिया हो, उस दिन सम्पूर्ण आत्मा से केवल उन्हीं को ध्यान में रखकर मैं कीर्तन करती रही। दिन भर और रात भर के अखंड कीर्तन के बाद जब दूसरे दिन मैं घर वापस जाने लगी तो वह फिर दरवाज़े पर खड़े थे। मुझे देखकर उन्होंने अपने भाव-विभोर आँखों में कृतज्ञता झलकाते हुए मेरी ओर हाथ जोड़े। मैं इस बार भी क्षण भर से अधिक उनकी ओर न देख सकी। पर उतने ही समय के अन्दर फिर एक बार उसी वैद्युतिक चुम्बक की तरंग ने मेरी आत्मा को पूरी शक्ति से आन्दोलित कर दिया। ताँगा खड़ा था। मेरे साथ की दो स्त्रियाँ पहले ही बैठ चुकी थीं। अन्त में मैं पीतल का डंडा पकड़कर ऊपर उठी। मेरे बैठने के पहले ही ताँगावाले ने भूल से घोड़े को हाँक दिया। अचानक झटका लगने से

मेरा हाथ डंडे से फिसल गया और मैं बुरी तरह गिर गई होती यदि ऐन मौके पर राधामोहन बाबू, जो वहीं पर खड़े थे, मेरा हाथ पकड़ न लेते।

"उनके हाथ के स्पर्श से वैद्युतिक चुम्बक की तरंग ने मेरी आत्मा के क्षेत्र को एकदम त्याग दिया और बाहर शरीर के क्षेत्र में व्याप्त होकर उसने ऐसे तूफानी ताल से हिलोरें लेना आरम्भ कर दिया जो मेरे लिये जीवन में एकदम नया अनुभव था। जब मैं घर पहुँची तो मेरे हृदय के आसपास एक अनोखे प्रकार की फड़फड़ाहट-सी होने लगी, बीच-बीच में, ऊपर पसलियों में एक तीखी पीड़ा के साथ। उसी दिन से उस घातक रोग के आक्रमण का सूत्रपात हुआ जिसके कारण दो वर्ष बाद मृत्यु हो गई। महाशय, उस साधारण घटना की प्रतिक्रिया ऐसे विकट रूप से मेरे भीतर होने लगी कि मैं प्रतिपल भीतर से भी छटपटाने लगी और बाहर से भी। यदि आपने मेरे शरीर और मन के इस तूफानी परिवर्तन-चक्र पर समय रहते ध्यान दिया होता तो सम्भव है मैं किसी कदर बच जाती। पर आपने वास्तविकता से कतराने के कारण यथार्थ परिस्थिति को जानने की चेष्टा कभी नहीं की और केवल डाक्टरी इलाज कराके अपना कर्तव्य पूरा हुआ समझ लिया। यह आपकी बड़ी भूल थी, जैसे कि अब आप महसूस करने लगे हैं। उसकी प्रतिक्रिया अभी काफी लम्बे अर्से तक आपके भीतर चलती रहेगी।"

इतना पढ़ते ही वकील साहब की नींद उचट गई। कुछ देर तक वह आँखें मलते रहे। उसके बाद इधर-उधर देखने लगे। जब कुछ न दिखाई दिया तो पलंग पर से उठकर प्लैनचेट के पास गये, यह देखने के लिये कि उसके नीचे कागज में सचमुच कुछ लिखा है या नहीं। उनकी निराशा और विस्मय की सीमा न रही जब उन्होंने देखा कि प्लैनचेट के नीचे का कागज एकदम कोरा पड़ा हुआ है।

वह सोचने लगे तब क्या ब्रजेश्वरी की प्रेतात्मा स्वप्न में उनके पास आई थी, जागरण अवस्था में नहीं? हाँ, वह स्वप्न ही तो था हालाँकि वह जागरण अवस्था से भी अधिक प्रत्यक्ष सत्य मालूम होता था। पर यह

कैसे मान लूँ कि चूँकि उसने स्वप्नावस्था में आकर अपना बयान लिखा इसलिये वह असत्य है। प्रेतात्माएँ जिस सूक्ष्म अवस्था में अपना जीवन बिताती हैं उसमें यही अधिक सम्भव है कि वे स्वप्न की सूक्ष्म अवचेतन अवस्था में ही हम लोगों से अधिक निकट आ पाती हैं। यदि ब्रजेश्वरी की प्रेतात्मा का आना सत्य नहीं है तो उसका जो अनोखा बयान मैंने स्वप्न में पढ़ा है उसकी बहुत-सी बातों की कल्पना ही मेरे मन में कैसे उदित हो गई, जिनके सम्बन्ध में मैंने कभी कुछ सोचा न था।

उन्होंने निश्चय किया कि वह अपने पड़ौस की कीर्तन-समिति में जाकर इस बात का पता लगायेंगे कि वहाँ राधामोहन शर्मा नाम के कोई सज्जन हैं कि नहीं। उसी दिन वह नहा-धोकर नास्ता-वास्ता करके पता लगाने चल पड़े। कीर्तन-समिति में जाकर पूछताँछ करने पर मालूम हुआ कि वहाँ राधामोहन शर्मा नाम के कोई सज्जन कभी नहीं आये। बाद में किसी ने इस तथ्य की ओर वकील साहब का ध्यान दिलाया कि पास ही एक सज्जन राधामोहन शर्मा नाम के रहते हैं जो कीर्तन-समिति में कभी नहीं आते पर अपने ही घर में रात-आधी रात जब मौज आई हारमोनियम बजाकर गर्दभ-स्वर में निराली आलापबाजी के साथ गाने लग जाते हैं और मुहल्ले वालों की नींद खराब करते हैं। अचानक वकील साहब को याद आया कि वह इस राधामोहन को अच्छी तरह जानते हैं। वह एक्साइज आफिस में एक साधारण क्लर्क था और एक बार मुवक्किल को लेकर उनके पास आया था। उसकी अर्द्धरात्रि के विकट आलाप से स्वयं वकील साहब की नींद कई बार नष्ट हो चुकी थी। उन्हें याद आया कि ब्रजेश्वरी की प्रेतात्मा का स्वप्न देखने के पहले जब वह सोने की तैयारी कर रहे थे तो वही राधामोहन हारमोनियम बजाता हुआ गला फाड़-फाड़कर आलापबाजी कर रहा था। तब क्या उनके उस सारे स्वप्न के मूल में केवल उसी राधामोहन नाम के गधे की आलापबाजी थी? वकील साहब बहुत देर तक इसी प्रश्न पर विचार करते रहे, पता नहीं उनके अन्तर्मन ने इस प्रश्न का क्या उत्तर दिया।

रुक्मा

रुक्मा सोच रही थी कि ऐसा कैसे हुआ। प्रायः दस वर्ष उसे अपना घर छोड़े कलकत्ते आये हो गये थे। जब से कलकत्ते आई, तब से बराबर खिदिरपुर के उसी गली वाले पुराने मकान में कभी ऊपर और कभी नीचे के तल्ले के सील-भरे कमरे में उसके दिन बीते और रातें भी। विवाह होने के बाद केवल एक बार—पहले ही वर्ष—वह पहाड़ पर कुछ दिनों के लिये अपने मायके वालों से मिली थी। तब वह सोलह साल की नयी ब्याही बहू थी और उसका पति कमलापति उसके प्रति सदय था। तब उसके बर्त्ताव में कोमलता थी और आज के-से रंग-ढंग नहीं थे। जब वह वापिस गई थी तब पति ने उसके लिये दो-चार नयी साड़ियाँ खरीद दी थीं, जो बहुत भड़कीली थीं और उसके गरीब पहाड़ी गाँव के लिये अनोखी और अपूर्व थीं। एक नये बक्स के भीतर वह खुशबूदार तेल की बढ़िया तस्वीर वाली रंगीन शीशी, रंगीन ही कंघी, शीशा, पौडर, किस्म-किस्म की रंग-बिरंगी चूड़ियाँ, तरह-तरह की चमकीली बिन्दियाँ, बढ़िया सिन्दूर आदि बहुत-सी चीजें बन्द करके ले गई थी। लम्बी यात्रा के बाद जब वह गाँव पहुँची, तब उसका पोशाक-पहनावा, रंग-ढंग, साज-सजावट, गुलाब-से खिले चेहरे की चमक और सुन्दर, प्रसन्न आँखों की दमक देखकर उसकी सहेलियाँ चकित रह गईं। जैसे वह उनकी बचपन में पहचानी रुक्मा नहीं, स्वर्ग-लोक से उतरी कोई परी हो। अपने मैले-कुचैले, खेत की मिट्टी से सने कपड़ों से उससे लिपटने का साहस किसी को नहीं होता था। वे केवल अपनी भोली, प्रसन्नता-मिश्रित, विस्मय-भरी आँखों से उसकी ओर टुकुर-टुकुर देखती रह गईं। रुक्मा स्वयं ही आगे बढ़कर एक-एक करके सभी सहेलियों के गले मिली। पर वह देख रही थी और

अनुभव कर रही थी कि सभी पहले की-सी निश्छलता और स्वच्छन्दता से उससे नहीं मिल पाती थीं। वह सचमुच उनसे अब बहुत दूर पड़ गई थी। इस अनुभव से उसका भोला हृदय रो पड़ा था। उसने बार-बार कोशिश की कि उसकी सखियाँ उसे पहले ही की रुक्मा समझकर हिलें-मिलें, और पहले ही की तरह बेतकल्लुफ़ी से उससे खेलें-कूदें और बातें करें, पर उसका कोई भी प्रयत्न सफल नहीं हो पाता था। ऐसा नहीं कि अब वे उसे प्यार न करती हों। उसे देखकर सभी की आँखें प्यार और प्रसन्नता से भर-भर आती थीं, पर साथ ही संभ्रम-भरी ईर्ष्या का जो एक सुस्पष्ट भाव उनकी आँखों में झलकता था और उनके बर्त्ताव से प्रकट होता था, वह रुक्मा को अपने लिये बड़ा ही घातक और मारक लगा था। उसे लगा कि वह अपनी सखियों से और अपने घर वालों से केवल पहाड़ से कलकत्ते जाकर ही दूर नहीं हुई थी, उनके निकट आने पर भी वह दूरी वैसी की वैसी बनी रह गई थी, बल्कि और अधिक बढ़ गई थी। एक महीने मायके रहकर जब वह उन सब लोगों से विदा होने लगी, तब उसके पति, चाचा, और विधवा फूफी के अतिरिक्त उसकी सखियाँ और गाँव की कुछ बड़ी-बूढ़ियाँ भी उसे प्रायः दो मील तक पहुँचाने गई थीं। सबको लग रहा था जैसे गाँव से कोई बड़ी निधि जा रही हो। वह घर में रंगाई गई बड़ी-बड़ी बुँदकियों वाली पिछौरी के नीचे कत्थई रंग का लहँगा पहने थी। नाक के कुछ ही ऊपर से माँग तक उज्ज्वल लाल रंग का एक लम्बा टीका उसके मस्तक की शोभा बढ़ा रहा था। सभी समवयसी और जवान स्त्रियों को उसके सौभाग्य पर ईर्ष्या हो रही थी और वे सब उसके प्रायः सैंतीस-अड़तीस साल के पति की ओर ललकती हुई आँखों से देख रही थीं—उसे रुक्मा के इतने बड़े भाग्य का विधायक जान कर।

दो मील के बाद सभी स्त्रियाँ वापस जाने लगीं। रुक्मा ने फूफी और बड़ी-बूढ़ियों को प्रणाम करके और सखियों के गले मिलकर गीली आँखों से सबसे विदाई ली। उसके बाद रह गये उसके चाचा, उसका पति, एक कुली और वह स्वयं। मोटर-स्टेशन तक पहुँचने के लिये तीन

मील और चलना था। कुछ दूर तक चढ़ाई पर चलने के बाद उतार आ गया और वे लोग तेज़ क़दम रखते हुए अन्तिम मोटर के छूटने के कुछ ही समय पहले पहुँचे। मोटर पर उन लोगों को चढ़ाकर चाचा भी रुक्मा का प्रणाम लेकर और स्नेह रस से भरी और बिछोह की व्यथा में डबडबाई आँखों से दोनों को आशीर्वाद देकर विदा हुए। मोटर संध्या को काठगोदाम पहुँची। तब तक गाड़ी नहीं छूटी थी। जब रुक्मा पति के साथ गाड़ी पर इत्मीनान से बैठ गई तब चारों ओर के पहाड़ों को उसने एक बार जी भरकर देखा। एक ठंडी आह उसके अन्तर से निकल गई। गाड़ी छूटी और उसने मन ही मन उन हरे-भरे पहाड़ों को प्रणाम किया।

तब से फिर कभी उन पहाड़ों के दर्शन उसे नहीं हुए। पूरे दस वर्ष बीत चुके थे। तबकी स्थिति और आज की स्थिति में कितना बड़ा अन्तर आ गया, वह यही सोच रही थी। गर्मी के दिन थे, दोपहर का समय था। भीतर से दरवाज़ा बन्द करके वह फ़र्श पर लेटी हुई थी। उसका पति दफ़्तर में था और वह घर पर अकेली थी। पति कमलापति जहाज़ की किसी कम्पनी के माल के दफ़्तर में एक साधारण क्लर्क की हैसियत से काम करता था। लड़ाई के ज़माने में उसने दूसरे कर्मचारियों के साथ मिलकर हज़ारों रुपया कमाया था। तब अन्धाधुन्ध और बेहिसाब का माल सिपाहियों के लिये बाहर जाता और आता था। उसकी लूट भी बीच में उसी अन्धाधुन्ध तरीके से होती थी। कमलापति मालामाल बन गया था। शराब में, जुए में और दूसरे अपकर्मों में दोनों हाथों से रुपये लुटाता था। उन्हीं दिनों उसके पहली स्त्री की मृत्यु हो गई। दूसरा विवाह करने के लिये वह घर गया। उसने अपने आदमियों से कहा कि वे एक अच्छी लड़की ढूँढ़ें और इस बात की तनिक भी परवाह न करें कि लड़की के घर वाले ग़रीब हैं या धनी, सामाजिक दृष्टि से ऊँचे हैं या नीचे। लड़की सुन्दर चाहिये, बस। फलस्वरूप रुक्मा का आविष्कार हुआ। वह वास्तव में बहुत सुन्दर थी। रुक्मा स्वयं भी प्रतिदिन

सखियों के मुँह से अपने रूप की प्रशंसा सुनते रहने और स्त्री-पुरुषों की ललचाई आँखों को अक्सर अपनी ओर गड़े हुए देखने से यह जान चुकी थी कि उसके चेहरे में कुछ विशेषता है। जो भी हो, एक दिन कमलापति स्वयं अपनी आँखों से देखने के लिये बढ़िया सूट-बूट और कालर-टाई से सुसज्जित होकर एक छड़ी हाथ में लेकर जब रुक्मा के गाँव में पहुँचा तब रुक्मा घास का एक गट्ठर सिर पर लादकर अपनी गाय के लिये ले जा रही थी। उस दिन की याद रुक्मा को अच्छी तरह थी। उसने कमलापति को देखकर समझा था कि कोई बड़ा सरकारी अफ़सर होगा। वह सहम गई थी और भय से काँपने लगी थी। भय का कारण वह स्वयं नहीं जानती थी। जब उसने देखा कि उस अफ़सर के साथ आये हुए दो आदमी उसी की ओर ऊँगली से इशारा कर रहे हैं, तब तो उसके भय का ठिकाना न रहा। धड़कते हुए हृदय से वह, प्रायः दौड़ती हुई, अपने घर की ओर भागी।

कमलापति को पहली ही दृष्टि में वह पसन्द आ गई। वह उसके चाचा से मिला। रुक्मा के माता-पिता दोनों ही बहुत पहले गुज़र चुके थे। उसके चाचा और विधवा फूफ़ी ने उसे पाल-पोसकर बड़ा किया था। वे लोग बहुत ही साधारण किसान थे। उस दिन केवल मिलना ही हुआ। उसके बाद एक दिन कमलापति के आदमियों ने विवाह की बातचीत चलाई, तब चाचा को अपने भाग्य पर पहले विश्वास नहीं हुआ। वर की उम्र लड़की से प्रायः ढाई गुना अधिक जानकर भी उसके उत्साह में कमी नहीं आई। पढ़ा-लिखा, पैसे वाला, उन लोगों की अपेक्षा कई गुना अधिक ऊँचे कुलवाला वर उन लोगों को कहाँ मिलता। फलतः शादी तत्काल तय हो गई और रुक्मा जल्दी ही एक दिन 'अफ़सराइन' बन गई। गाँव के लोग सचमुच उसे स्नेहपूर्ण परिहास में 'अफ़सराइन' कहने लगे। वह सुनती, सिर नीचा करके मुस्कराती और मन ही मन गर्व का अनुभव करती।

रुक्मा को कलकत्ते आने पर प्रारम्भ में, प्रायः एक वर्ष तक, कमलापति ने बहुत प्यार और आराम से रखा। वह अक्सर उसे टैक्सी पर

बिठाकर कभी सिनेमा दिखाने ले जाता, कभी थियेटर। कभी छुट्टी के दिन घुड़दौड़ के मैदान में ले जाता, कभी बोटैनिकल गार्डन्स की सैर कराता। तरह-तरह की रंग-बिरंगी साड़ियाँ और गहने भी उसने उसके लिये खरीदे। एक बंगाली नौकरानी उसके साथ के लिये रखी। चूल्हा-चौका करने वाली नौकरानी अलग से आती थी। रुक्मा पहाड़ से बिछोह का अनुभव सब समय करते रहने पर भी एक प्रकार से खुश थी। पति का प्यार पाकर उसे सन्तोष था, हालाँकि तब भी कमलापति अक्सर रात में देर से आता, और जब आता तो उसके मुँह से विकट दुर्गन्ध आती, और उस हालत में उसका व्यवहार जंगलियों और उजड्ड लोगों का-सा रहता। फिर भी वह सन्तुष्ट थी, क्योंकि तब वह जानती थी कि वह उसे प्यार करता है।

पर दूसरे ही वर्ष से स्थिति एकदम बदल गई। लड़ाई ख़त्म हो गई और सिपाहियों के लिये अन्धाधुन्ध माल का भेजा जाना एकदम बन्द हो गया। कमलापति और उसके साथियों की ऊपरी आमदनी प्रायः शून्य के बराबर रह गई। केवल वेतन शेष रह गया, जो डेढ़ सौ से अधिक नहीं था। 'सुकाल' के दिनों में जो हज़ारों रुपया उसने कमाया था, उसमें से एक पाई भी बचा नहीं पाया था। जितना भी रुपया हाथ में आता गया, उसे वह मुक्तहस्त होकर फूँकता चला गया था।

रुपया चला गया था, पर बिगड़ी हुई आदतें बची रह गईं थीं। शराब का चस्का नहीं छूट पाता था और जुए की इल्लत घटने के बजाय और बढ़ गई थी। रुपया न रहने पर किसी भी हताश आदमी के लिये जुआ यों भी एक बहुत बड़ा आकर्षण बन जाता है, फिर जिसे पहले ही से आदत पड़ी हुई हो उसे तो उस हालत में जुए के पीछे अपना सर्वस्व गँवाकर भी सन्तोष नहीं हो सकता। फल यह हुआ कि एक-एक करके रुक्मा के गहने ग़ायब होते चले गये। दोनों नौकरानियाँ अलग कर दी गईं। सिनेमा और थियेटर जाना तो बन्द हुआ ही कमरे से बाहर निकल पाना भी रुक्मा के लिये दुश्वार हो गया। पहले उसी मकान के ऊपर दो अच्छे और हवादार

कमरे कमलापति ने किराये पर ले रखे थे। अब उनका किराया ज्यादा महसूस होने के कारण सबसे नीचे के तल्ले में सील और बदबू से भरा एक कमरा, जो संयोग से खाली ही पड़ा था, सस्ते किराये पर ले लिया। रुपये-पैसे की तंगी के कारण कमलापति के स्वभाव में भी बहुत बड़ा अन्तर आ गया। बात-बात में वह रुक्मा के चरित्र के सम्बन्ध में सन्देह प्रकट करने लगा। केवल उसके मिजाज़ में ही चिड़चिड़ापन नहीं आया, बल्कि वह शक्की भी हो गया। दिन में अपने निपट अकेलेपन से उकता-कर वह कभी-कभी उसी मकान में ऊपर के तल्ले के अपने पुराने पड़ोसियों के यहाँ स्त्रियों के साथ बैठने चली जाती थी। दो परिवारों से उसकी विशेष घनिष्ठता थी, जिनमें एक बंगाली था और दूसरा पंजाबी। बंगाली से भी पंजाबी परिवार से उसका अधिक हेलमेल था। वह न तो बंगला ही ठीक से समझ पाती थी न बंगाली हिन्दी। इसलिये पंजाबी परि-वार की स्त्रियों को अपने अधिक निकट पाती थी। एक दिन कमलापति दफ़्तर से कुछ जल्दी चला आया। रुक्मा को ढूँढ़ने पर पता चला कि वह ऊपर के तल्ले में पंजाबियों के कमरे में है। जब रुक्मा नीचे आई, तब उसने उसे बुरी तरह डाँटना और बुरा-भला कहना आरम्भ कर दिया। क्रोध से काँपता हुआ वह बोला, "मैं जानता हूँ कि ऊपर जो एक पंजाबी छोकरा रहता है वह जवान है और मुझसे ज़्यादा खूबसूरत है। इसीलिये उस पर तुम्हारी नज़र गड़ी हुई है। यह न समझना कि मैं अन्धा हूँ। तुम दोनों को एक दिन वह मज़ा चखाऊँगा।"···आदि-आदि।

पहले तो रुक्मा कुछ समझ ही न पाई। पर दूसरे ही क्षण उसका बात के भीतर छिपा हुआ एक अस्पष्ट संकेत उसके आगे धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगा। वह थर-थर काँपती हुई मू दृष्टि से उसकी ओर देखती रह गई। उसकी ओर देखते हुए पहली बार उसे लगा कि वह सचमुच इधर पहले से बहुत कुरूप भी हो गया है। कमलापति की हिंस्र आँखों के इर्द-गिर्द, उसके कपाल में और गालों पर जो टेढ़ी-मेढ़ी झुर्रियाँ इधर कुछ समय से पड़ गई थीं वे इस समय और अधिक विकट और भयंकर दिखाई

देने लगीं। देखकर वह इस कदर डर गई कि उसके मुँह से अपनी सफ़ाई में एक भी शब्द नहीं निकल पाया। उसने चुपचाप उसकी ओर से पीठ फेर ली और अँगीठी में कोयले डालकर चाय का पानी चढ़ाने की तैयारी करने लगी।

आज सुबह जो घटना घट चुकी थी, उसी सिलसिले में रुक्मा को सीमेन्ट पर लेटे-लेटे वे सब पुरानी बातें एक-एक करके याद आ रही थीं। वह सोच रही थी कि एक ओर वह इस हद तक शक्की बन गया था, और दूसरी ओर यह हाल था कि जब कभी कोई आग़ा व्याज का रुपया वसूल करने के लिये सबेरे ही घर पर आकर दरवाज़ा खटखटाता तब वह स्वयं गुसलखाने में छिप जाता और रुक्मा से कहता कि दरवाज़ा खोलकर उससे कह दो कि वह घर पर नहीं हैं, दो-एक दिन बाद स्वयं तुम्हारे घर आकर रुपया दे जायेंगे। आग़ा लोगों की आकृति, गुण, स्वभाव, चरित्र और पेशे के सम्बन्ध में रुक्मा को कोई जानकारी नहीं थी। जब पहली बार उसने एक भीमकाय आग़ा को लम्बी लाठी हाथ में लिये दरवाज़े पर खड़ा देखा और विचित्र उच्चारण के साथ उसका गर्जन सुना, तब उसे लगा कि मारे भय के वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ेगी। किसी तरह काँपते हुए गले से उसने अपने पति की बात अपनी ओर से दुहराई। आग़ा ने गरजते हुए कहा, "परसों रुपिया ज़रूर मिल जाना चाहिये, नहीं तो नतीजा अच्छा न होगा।" सुनकर रुक्मा ने हड़बड़ाते हुए दरवाज़ा बन्द कर लिया और दुःख, क्रोध, लज्जा और भय से वह रो पड़ी थी।

अक्सर शनिवार को रात भर और इतवार को दिन भर कमलापति के यहाँ उसके जुआरी साथियों की बैठक जमती। कमरे के आरपार एक काला पर्दा टाँग दिया जाता। एक चौथाई भाग में रुक्मा सिकुड़कर बैठी या लेटी रहती और शेष तीन चौथाई भाग में जुआ होता और देसी शराब के दौर चलते रहते। बीच-बीच में जुआरी बुरी तरह लड़ते-झगड़ते और एक दूसरे की बहुत गन्दी और अश्रव्य गालियाँ देने लगते। सुनकर रुक्मा का शरीर और मन लज्जा, घृणा और ग्लानि से कंटकित हो उठता।

फिर कुछ ही समय बाद अट्टहास और परस्पर प्रेमालाप चलने लगता। रुक्मा को कई बार उन लोगों को चाय पिलानी पड़ती और कभी-कभी खाना भी खिलाना पड़ता। पता नहीं, जुआ खेलने के दिन कमलापति के पास रुपया कहाँ से आ जाता और चाय, चीनी और दूसरा सामान कहाँ से आकर जुट जाता। रात भर जगे रहने के बाद दूसरे दिन जब वह कमरे की सफ़ाई करती, तब फर्श पर पड़े सिगरेटों और बीड़ियों के जले हुए टुकड़ों का ढेर उसे बटोरना पड़ता। कमलापति जीता या हारा, इसका पता उसे आसानी से लग जाता। जिस दिन वह हारा होता उस दिन रुक्मा पर किसी न किसी बहाने बुरी तरह मार पड़ती और बात-बात पर गन्दी से गन्दी गालियों की बौछार होती। और जिस दिन वह जीता होता उस दिन बड़े ही प्रेम और सांत्वना के स्वर में कमलापति कहता, "तुम घबराती क्यों हो ? मैं आज ही तुम्हारे लिये पहले से भी बढ़िया गहने और कपड़े खरीद दूँगा। जल्दी ही हम लोगों के दुःख के दिन दूर हो जायेंगे।" पर फिर कभी न गहने खरीदे जाते न कपड़े। दूसरी ही बार उस पर उसी तरह मार पड़ती और गालियाँ बरसने लगतीं। जीत के दिन कभी ही आते, अधिकतर हार ही की प्रतिक्रिया का सामना रुक्मा को करना पड़ता।

इस बार भी शनिवार की रात भर जुआ होता रहा, पर दूसरे दिन, इतवार को, किसी कारण से जुआरी नहीं जुट पाये। दिन के बदले इस बार इतवार को भी रात में बैठक जमी। लगातार दो रातों के जागरण का फल यह हुआ कि रुक्मा न चाहने पर भी सुबह चार बजे के क़रीब बेखबर होकर पर्दे के उस पार ज़मीन पर लेट गई। उसके बाल बिखरे ए थे और साड़ी अस्त-व्यस्त पड़ी थी। साढ़े पाँच बजे के क़रीब जब सभी जुआरी चले गये तब कमलापति ने पर्दा हटाया। रुक्मा को बेख़बर बाईं करवट लेटे देखकर उसका पाँव खुजलाया और उसने खींचकर एक लात जमाई। अर्द्धजागरण की-सी अवस्था में रुक्मा ने करवट बदलते हुए कहा···"क्या बात है ?" और फिर उसी क्षण उसकी आँखें बरबस मूँद

गई। कमलापति ने पूरी ताकत से एक दूसरी लात मारी और फिर तीसरी और चौथी...आँखें मलती हुई रुक्मा हड़बड़ाती हुई बोली, "यह क्या कर रहे हो ?"

"हरामजादी, तुझे शरम नहीं आती इस तरह बेहूदा ढंग से लेटते हुए ? उठ, झट से एक प्याला चाय तैयार कर । रात भर का जगा हूँ, इतनी देर तक एक प्याली चाय भी नहीं मिली। ऐसी औरत के साथ गिरस्ती चलाने से तो मर जाना अच्छा है।"

रुक्मा एक शब्द भी न बोली। साड़ी के छोर को सिर के ऊपर सरकाती हुई चुपचाप उठी और अँगीठी जलाने लगी।

दिन में जब कमलापति दफ़्तर चला गया, तब आज बहुत दिनों के बाद उसे अपनी सारी स्थिति पर विचार करने की इच्छा हुई। किवाड़ बन्द करके वह सीमेन्ट के ऊपर ही लेट गई। दरी भी उसने नहीं बिछाई। गर्मी बहुत कड़ी थी और भीतर दम घुटा जा रहा था। उसके पास हाथ का पंखा भी नहीं था। एक फटा-पुराना अख़बार मोड़कर उसी से कुछ क्षण हवा करती रही, बाद में उसे भी छोड़ दिया। गल्ली में अपेक्षाकृत सन्नाटा था, पर गली के पास ही पूरब की ओर बड़ी सड़क से निरन्तर मोटरों और ट्रामों की घर्घर ध्वनि, भोंपू और घंटी की आवाज़ मन की और बाहर की शान्ति भंग कर रही थी।

लेटे-लेटे वह सोचने लगी कि उसके जीवन की गाड़ी कहाँ से कहाँ जाकर टकराई और कहाँ आकर दलदल में फँसकर रह गई। ठीक इन्हीं शब्दों में सोचने की बुद्धि उसमें नहीं थी। पर उसके बहुत चोट खाये हुए, पीड़ित और तपे हुए अन्तर से भाप की तरह निकलने वाले भावों की अस्पष्ट रूप-रेखा कुछ इसी प्रकार थी। उसे उस दिन की याद आ रही थी जब उसकी सखियाँ और गाँव की दूसरी स्त्रियाँ ललकती हुई आँखों से उसे और उसके पति की ओर देखती हुई उसके 'सौभाग्य' के प्रति ईर्ष्यालु हो उठी थीं। न जाने कितने युग बीत गये उसे पहाड़ को छोड़े ! कलकत्ते के ऊँचे-ऊँचे, पाषाण से भी कठोर ईंटों के बने भवनों और

मनुष्य के अस्तित्व की तनिक भी परवाह न करनेवाली बड़ी-बड़ी मोटरों और ट्रामों के बीच में दस वर्ष रहने से उसका हृदय भी जैसे पथरा गया था और वह अपने अस्तित्व के उस स्रोत को ही भूल गई थी, जिससे उसका प्रारम्भिक जीवन लहलहाया हुआ था। वह स्रोत भरी जवानी के तट पर आते न आते न जाने किस भीषण रेगिस्तान के भीतर फँसकर, सूखकर, उससे कटकर रह गया। कलकत्ते में लाखों आदमी रहते हैं, पर अपने दस वर्ष के जीवन में उसने कहीं किसी मनुष्य के सहृदय प्राणों का स्पर्श तो क्या, छाया तक नहीं पाई थी। वे सब मनुष्य उसके लिये जैसे किसी निराले ही लोक के विजातीय जीव थे। वे प्रेत, पिशाच, भूत, बैताल, यक्ष, दानव या इसी तरह की किसी और योनि के प्राणी भले ही हों, पर मनुष्य नहीं थे। वह उनसे चारों ओर से घिरी रहने पर भी किसी निर्मम जादूगर के विचित्र अभिशाप के कारण उनके संपर्क से एकदम परे थी। उनकी साँस भी उसकी साँस से आकर नहीं टकराती थी। और जिन लोगों से, जिस ऊँची पहाड़ी धरती से उसके प्राण कभी एक रूप में बँधे थे, उनसे कितनी दूर वह पड़ गई थी! न जाने कितने असंख्य योजनों का, कितने अनन्त युगों का व्यवधान उनके और उसके बीच में पड़ गया था। उसकी निद्रालु आँखें झपती चली जा रही थीं और साथ ही उसके अन्तर्लोक से उठने वाली भाव-छायाएँ विचित्र से विचित्रतर, अस्पष्ट से अस्पष्टतर रूप धारण करके उसके सिर के भीतर चक्कर काटती हुई एक अनोखा, उद्दाम और उच्छृङ्खल नृत्य-सी करने लगी थीं।

सहसा उसने अनुभव किया कि उसका शरीर हल्का होता चला जा रहा है। दूसरे ही क्षण वह रूई से भी हलकी होकर आकाश में उड़ने लगी और बहुत दूर तक उड़ने के बाद जब नीचे उतरी तो उसने अपने को एकदम बदला हुआ पाया। साड़ी और जम्पर की जगह उसका शरीर लहँगा, पिछौरी और अँगिया से ढका हुआ था। उसे आश्चर्य हो रहा था कि वह चौदह-पन्द्रह वर्ष की लड़की कैसे बन गई। उसके चारों ओर ऊँचे-ऊँचे पहाड़ थे। वह स्वयं एक ऊँचे टीले पर खड़ी थी।

बहुत दूर नीचे एक छोटी-सी नदी के किनारे एक गाँव था। लगता था जैसे चारों ओर चाँदनी छिटकी हुई हो, सर्वत्र सन्नाटा छाया था। वह गला फाड़कर किसी को हाँक लगाना चाहती थी, पर आवाज़ निकलती ही नहीं थी। न जाने कहाँ कोई एक चिड़िया बहुत ही धीमे स्वर में, कुछ क्षणों के अन्तर से बोल रही थी। वह बोलना क्या था, लगता था जैसे अपनी दो नन्हीं-सी चोंचों से सिसकारी भर रही हो। जैसे वह उस सारे सन्नाटे के हृदय का स्पन्दन हो। वह उस सारी पहाड़ी प्रकृति में···सारे विश्व में···अपने अकेलेपन की अनुभूति से घबरा उठी। वह रोना ही चाहती थी कि सहसा उसके कान खड़े हुए। लगा कि उल्लास-भरे स्वर में गाने वाली स्त्रियों और पुरुषों की एक टोली नीचे किसी स्थान से ऊपर की ओर चली आ रही है। आनन्द राग में मस्त स्त्रियों और पुरुषों का वह दल निकट से निकटतर आता चला गया। कुछ ही समय बाद उसने देखा कि वे लोग उसके बिलकुल ही पास आ पहुँचे। सबके कपड़े होली के विविध रंगों से रंगे हुए थे। उसने अपने कपड़ों की ओर देखा, उनमें भी लाल, हरे और बसन्ती रंगों के छींटे जाने कहाँ से चढ़ गये थे। वह दौड़ती हुई नीचे उतरी और स्त्रियों की टोली में जा मिली और उन्हीं के स्वर में स्वर मिलाती हुई पूरी तरह से गला खोलकर गाने लगी। उसे आश्चर्य हुआ कि उसका गला अचानक अपने आप कैसे खुल गया। वह टोली एक ऐसी जगह पहुँची जहाँ मैदान था। वहाँ पहुँचकर स्त्रियों ने रास-मंडल की तरह एक गोल बाँध लिया और पुरुषों ने भी अलग एक गोल घेरा बना लिया। वे लोग ताल और लय में नाचने और गाने लगे। रुक्मा के आनन्द और उल्लास की सीमा नहीं थी। वह मुक्त कंठ से गा रही थी और स्वच्छन्द गति से नाच रही थी और अपने अगल-बगल वह जिन दो लड़कियों का—सम्भवतः अपनी सहेलियों का—हाथ पकड़कर कभी बायें और कभी दायें झुककर नाच रही थी, उनमें से एक ने कहा, "अरी रुक्मा, यहाँ कहाँ आकर नाचने लगी? तेरी तो शादी हो गई है। तू तो 'अफ़सराइन' बन गई है। तेरा वह अफ़सर देखेगा तो क्या कहेगा?"

"कहाँ हुई मेरी शादी ?" रुक्मा ने भार-मुक्त हृदय से निकले हुए आराम के उच्छ्वास के साथ कहा, "पगली कहीं की ! वह तो सपना था, मैंने ही तो तुझे बताया था ।"

फिर सहसा उसका हृदय धड़क उठा, यह सोचकर कि कहीं सचमुच ही उसकी शादी हो न गई हो और वह भूल रही हो । गोल से अलग होकर वह शंकित हृदय से एक अधेड़ स्त्री के पास पहुँची, जो एक किनारे खड़ी थी । "तुम्हीं बताओ मौसी, क्या मेरी शादी हो गई है ?" उसने पूछा । पर उस औरत ने कोई उत्तर नहीं दिया । इसी तरह तीन-चार औरतों से उसने बड़ी ही चिन्ता के स्वर में पूछा,पर सब मुस्कराकर चुप रह जाती थीं, कोई कुछ उत्तर नहीं देती थी । वह पागलों की तरह इधर-उधर दौड़ने लगी । कौन करेगा उसकी शंका का समाधान ? क्या सचमुच उसकी शादी हो चुकी है ? नहीं, नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता ! उसके साथ की इतनी लड़कियों में से जब किसी की शादी नहीं हुई तब उसी की क्यों होगी ? पर ये लोग पूछने पर भी कुछ जवाब क्यों नहीं देते ? वह उसी घबराहट में पुरुषों के गोल में पहुँची । वह एक-एक करके सबको पहचानने की कोशिश करने लगी । जिसे भी देखती, पहली झलक में उसे लगता था कि उसे वह पहचानती है, पर फिर उसका रूप बदल-कर कुछ का कुछ हो जाता था । सहसा उसने देखा कि कमलापति भी उसी मंडली में नाचता हुआ गा रहा है । "ये लोग कौन हैं ?" उसने अपने से पूछा···"यह मैं कहाँ आ गई हूँ ? मुझे दूसरी जगह जाना चाहिये ।" दूसरे ही क्षण वह मंडली जुए की बैठक में बदल गई । "नहीं, मैं तो यहाँ नहीं थी ? मुझे भागना चाहिये ।" यह सोचती हुई वह दौड़ती हुई नीचे की ओर गई । वहाँ अठारह साल के एक लड़के को देखकर पूछा··· "सुनो जी, तुम कौन हो ?" वह लड़का मुस्कराया और उसकी आकृति स्पष्ट से स्पष्टतर होती गई । पहचानकर वह उल्लास में उछल पड़ी और उसकी सारी घबराहट जाती रही । वह तिलोकसिंह था, उसका पुराना साथी—दोपहर में गायों और भैंसों को चराता हुआ एक टीले

पर पीठ अड़ाकर बड़े ही मीठे स्वर में बंशी बजाने वाला।

"अरे तिलोकिया, तू यहाँ कहाँ ? तू ही बता, क्या मेरी शादी हो गई है ?"

"नहीं पगली, अभी से तेरी शादी कैसे होगी ? तू क्या सपना देख रही है ? जब मेरी शादी होगी तब तेरी भी होगी। बैठ, मैं बंशी बजाता हूँ, तू सुन।"

चैन की साँस लेती हुई रुक्मा बैठ गई। तिलोकसिंह जेब से बंशी निकालकर बजाने लगा; वही पुराना मीठी उदासी से भरा पहाड़ी राग। रुक्मा मग्न मन होकर तिलोकसिंह के सरस सहृदयता से भरे सुन्दर मुख की ओर एकटक देख रही थी। इतने में होली के राग-रंग में मस्त स्त्रियों और पुरुषों की सम्मिलित टोली पहले ही की तरह मस्ती में गाती हुई वहाँ पहुँच गई। रुक्मा फिर निश्चिन्त और भार-मुक्त मन से उनके साथ मिल गई और पूरी ताक़त से उनके उल्लसित स्वर में स्वर मिलाती हुई, नाचने और कूदने लगी। एक अलौकिक उन्माद, एक स्वर्गीय रोमांच से उसका सारा शरीर, सम्पूर्ण हृदय और समग्र आत्मा—पुलकित हो उठी थी। तिलोकसिंह भी उसके उल्लास से प्रभावित होकर उसी के स्वर का साथ देता हुआ बंशी बजाता जाता था। धीरे-धीरे वह और तिलोकसिंह दोनों आगे बढ़ गये और सारे गायक दल का नेतृत्व करने लगे।

इतने में सहसा पास ही जैसे कोई पहाड़ भरभराता हुआ टूटकर गिर पड़ा। रुक्मा चौंक उठी। उसने आँखें खोलीं, बाहर दरवाज़े पर बड़े ज़ोरों से 'ठक-ठक-ठक' शब्द हो रहा था।

"कौन है ?" हड़बड़ाकर रुक्मा ने पूछा।

"हम हैं आग़ा", गुरु-गम्भीर गर्जन के साथ बाहर से आवाज़ आई।

सुनकर रुक्मा धक से रह गई। उसे लगा कि उसकी आत्मा उड़कर न जाने कहाँ, पहाड़ों से भी बहुत दूर ऊपर पहुँच चुकी है, केवल उसका मृत शरीर सीमेंट पर पड़ा हुआ है, जिसे उठाकर ले जाने के लिये बाहर दरवाज़े पर यमदूत खड़ा है।

अंधी गलियाँ

दिन भर थाना से बंबई और बंबई से थाना जानेवाली स्थानीय गाड़ियों में बिना टिकट के चढ़कर मुसाफिरों के आगे गिड़गिड़ाने और टिकट-निरीक्षकों की सुफ़ेद पोशाक देखते ही फुर्ती से बीच के स्टेशन में उतरते रहने का क्रम शाम को बड़ी देर तक जारी रखने के बाद भी जब सल्लो के पास इतने पैसे जमा नहीं हो पाये जितने से अपने और अपनी अम्माँ के पेट के तकाज़े को दो जून के लिये पूरा कर पाती तो उसे बड़ी निराशा हुई। आज बहुत दिनों के बाद उसके मन को इस प्रकार चुभने वाली निराशा का अनुभव हो रहा था। आज उसकी उत्कट निराशा के कुछ और कारण भी थे। उसका पाँच साल का अन्धा लड़का, जिसे वह अपने साथ भीख माँगने ले जाया करती थी, दो दिन से ग़ायब था। उसकी अम्माँ भी तीन दिन से बीमार पड़ी थी। अम्माँ का उसे बहुत बड़ा बल था। वर्षों के अभ्यास से उसकी अम्माँ भीख माँगने की कला में सिद्धहस्त हो गई थी। लक्खो—सल्लो की अम्मा—दिन भर के चक्कर के बाद औसत डेढ़ रुपया कमा करके लाती थी। मनहूस से मनहूस दिन में भी वह एक रुपये से कम कभी नहीं लाई। देखने में लक्खो बहुत क्षीण और दुर्बल लगती थी, तथापि उसके चीमड़ प्राणों के भीतर न जाने कहाँ शक्ति छिपी थी जो उसे कभी एक दिन के लिये भी बीमार नहीं होने देती थी। इसलिये इतने वर्षों तक सल्लो के ऊपर कभी एक दिन के लिये भी किसी प्रकार के दायित्व का भार नहीं पड़ा था। वह दिन भर में अपने अन्धे बच्चे की सहायता से जो पैसे कमा लेती थी उनमें से प्रायः तीन चौथाई चना, 'भेल' (एक प्रकार का पचमेल चबैना) या चटपटी चाट खाने में खर्च कर देती थी और जो दो-चार पैसे बचते थे उन्हें अम्माँ के हाथ में थमा

देती थी। उसके और उसके बच्चे के सुबह-शाम के भोजन का सारा भार अकेले उसकी अम्माँ के ही ऊपर था। वह निश्चिन्त थी, और एक बच्चे की माँ होने पर भी अभी तक अपने को भी बच्चा ही मानती थी। पर पिछले तीन दिनों में उसकी अम्माँ सहसा बीमार पड़ गई और ऐसी बीमार कि जिस फुटपाथ पर बीमार के पूर्व वाली रात में सोई थी दूसरे दिन बहुत चाहने पर भी वहाँ से उठ नहीं पाई···दो क़दम चलना तो दूर की बात। इधर अम्माँ का यह हाल और उधर उसका अन्धा बच्चा, जिसके सहारे वह कुछ कमा लेती थी, सहसा ऐसा ग़ायब हो गया था कि सम्भव और असम्भव स्थानों की ख़ाक छान डालने के बाद भी कहीं उसका पता वह नहीं लगा पाई थी। वह पैसे के लिये मुसाफिरों की चिरौरी करती जाती थी। कोई भी भिखारी बच्चा उसके अपने बच्चे की उम्र का दिखाई देता तो जब तक उसका चेहरा न देख लेती तब तक आशा के विरुद्ध भी वह यह आशा किये रहती कि वह उसी का बच्चा होगा, और फिर 'हाय बच्चा ! हाय बच्चा !' कहकर मन ही मन छाती पीटकर रह जाती।

सल्लो का पहला बच्चा चार साल की उम्र में ही जाता रहा। वह सुन्दर और स्वस्थ था। जब वह पैदा हुआ तब लक्खो (सल्लो की माँ) को बड़ी निराशा हुई। उसे लगा कि वह अपने पुश्तैनी पेशे के लिये एकदम अनुपयुक्त ठहरेगा। क्योंकि एक स्वस्थ बच्चे के प्रति लोगों के मन में करुणा कैसे जगाई जा सकेगी ? वह आजीवन उसके लिये भारस्वरूप बना रहेगा। इसलिये उसके प्रति लक्खो के मन में ममता और विरक्ति के भाव कभी बारी-बारी से और कभी एक साथ जगते थे। वह सल्लो को भरसक उसकी उपेक्षा करते रहने की सीख देती रहती थी, ताकि अनुचित पालन-पोषण के अभाव में वह रुग्ण और शीर्ण दिखाई दे और इस प्रकार लोगों की करुणा का पात्र बन सके। सल्लो माँ का हृदय पाकर उसकी उपेक्षा नहीं कर सकती थी और हर वक्त उसे छाती से लगाये रहती थी, पर वह स्वयं बीमार पड़ गई थी और उसकी छाती का

दूध सूख गया था। पर पालन-पोषण की सारी असुविधाओं के बावजूद बच्चा दिन पर दिन अधिक सुन्दर और अधिक स्वस्थ होता जाता था। न जाने वह पेट ही से कौन-सी अमृत घुटी पीकर पैदा हुआ था। जिस दिन लक्खो या सल्लो उसको गोद में लेकर भीख माँगने निकलती थी उस दिन उसकी आमदनी प्रायः काफी घट जाती थी। वैसे भी वर्षों के अभ्यास से लक्खो इतना जन-मनोविज्ञान समझने लगी थी कि स्वस्थ बच्चे की माता के प्रति लोगों की समवेदना अधिक नहीं उमड़ सकती।

अन्त में उसे एक उपाय सूझा। वह आधा पेट खाकर प्रतिदिन अपनी कमाई के पैसों में से चार आने बचाने लगी और दो महीने में वह इस योग्य हो गई कि अपने लिये एक अच्छी-सी धोती और बच्चे के लिये दो-तीन जोड़ी नये कपड़े खरीद सके।

उसके बाद एक दिन शाम को अपनी वर्षों से मैली और चारों ओर से फटी धोती त्यागकर नयी धोती पहनकर और बच्चे को नये कपड़े पहनाकर वह चौपाटी में एक ऐसे स्थान पर जा बैठी जहाँ समुद्र की हवा खाने को आये हुए स्त्री-पुरुषों का जमघट रहता था। वहाँ पर एक कपड़ा बिछाकर वह घूँघट काढ़कर बैठ गई और बच्चे को वहीं सुला दिया। बच्चे को दूध के साथ उसने बहुत थोड़ी-सी अफ़ीम मिलाकर पिला दी थी, जिसके प्रभाव से वह बेखबर हो गया था। यह नाटक काम कर गया। चादर पर पैसों, अधन्नों और इकन्नियों की भरमार होने लगी। वह 'मोटा मनोविज्ञान' जिसने जादू का-सा काम किया, केवल यह था कि लोग उसे और उसके गहरी नींद में बेखबर सोये हुए बच्चे को देखकर यह समझने लगते थे कि निम्न मध्यवर्ग की कोई सद्गृहस्थ नारी किसी कारण से आर्थिक कष्ट में पड़कर इस दयनीय दशा को प्राप्त हुई है कि अन्त में भीख पर गुज़ारा करने के सिवा उसके लिये कोई रास्ता ही नहीं रह गया। वास्तविकता यह थी कि सारा जादू उसके घूँघट में निहित था।

जो भी हो, उस दिन रात में जब वह काफी देर बाद लौटी तब उसे केवल खासी-अच्छी आमदनी होने की ही खुशी नहीं हो रही थी, बल्कि

यह सोचकर भी उसके मन में प्रसन्नता नहीं समा रही थी कि उसने अपनी ही सूझ से एक ऐसे तरीके का आविष्कार किया है जिसमें उसके लिये बच्चा वरदान सिद्ध हो गया है। कुछ समय तक वह इस उपाय से काफ़ी पैसा बटोरती रही, स्वयं खूब खाती रही और शेष पैसा अम्माँ को जमा करने के लिये देती रही। उसकी अम्माँ ने उन पैसों से कुछ पुरानी लकड़ी और फटा-पुराना तिरपाल खरीदकर, मजदूर लगाकर एक झोंपड़ी तैयार करवा डाली।

माँ के बचे पैसों से उसने दो-एक सादी किन्तु रंगीन साड़ियाँ और खरीदीं और कभी एक साड़ी पहनकर जाती और कभी दूसरी। केवल आर्थिक प्रलोभन या नाटकीय भावना से प्रेरित होकर ही वह ऐसा नहीं करती थी। अपने अन्तर की एक विशेष स्वप्नाकांक्षा की पूर्ति भी वह अज्ञात ही में इस उपाय से करती थी। उस स्वस्थ और सुन्दर बच्चे की माँ बनने के पूर्व उसका सम्बन्ध रेलवे के एक बाबू से हो चुका था। माँ बनते ही उस बाबू ने उससे ऐसा मुँह मोड़ लिया था जैसे उसे कभी देखा ही न हो। तब से वह सचमुच में 'सद्गृहस्थ' नारी बनने का स्वप्न देखती आती थी।

बच्चे को उसकी नानी प्रतिदिन जो थोड़ी-सी अफ़ीम घोलकर पिला देती थी (ताकि वह नाटकीयता में कोई विघ्न उपस्थित न करे) उसका प्रभाव धीरे-धीरे बच्चे के स्वास्थ्य पर बुरी तरह पड़ने लगा। बच्चा दिन पर दिन क्षीण और दुर्बल होता गया और अन्त में एक दिन चल बसा। सल्ला सिर पटककर रह गई। इसी बीच वह झोंपड़ी भी उन लोगों से छिन गई जिसे उसकी अम्माँ ने तैयार करवाया था। इम्प्रूवमैंट ट्रस्ट ने वह ज़मीन अपने क़ाबू में ले ली और वहाँ पर बनी हुई यह झोंपड़ियाँ उखड़वा डाली गईं।

बच्चे की जीवितावस्था में ही उसकी आमदनी बहुत घट चुकी थी, क्योंकि लोग उस नाटक से धीरे-धीरे उकताने लगे थे। लगता था जैसे उसकी चालाकी उनकी पकड़ में आ गई हो। और बच्चे की मृत्यु के

बाद तो सब कुछ शून्य ही हो गया। कुछ दिनों तक वह इस योग्य ही नहीं थी कि फेरी लगाने बाहर जा सके और कुछ कमाकर अपना पेट भरे और अम्माँ को भी दे। बाद में जब मरे या जर्जर तन से वह बाहर निकली तब दिन भर के चक्कर के बाद प्रायः कुछ भी न कमाकर लौटी। गनीमत यह थी कि उसकी अम्माँ वर्षों के अभ्यास से भीख माँगने की कला में काफ़ी निपुण होने के कारण इतना कमा लाती थी जितने से वे लोग जी सकें।

धीरे-धीरे जीवन की गाड़ी फिर अपने पुराने ढर्रे पर आकर चलने लगी। वह फिर उसी स्थिति में पहुँच गई जो रेलवे बाबू से सम्बन्ध होने के पूर्व थी अर्थात् दो-चार आने के चने-चबेने से किसी तरह गुज़र करना और फुटपाथ पर सोये रहना। महँगाई दिन पर दिन बढ़ती चली जा रही थी और उसी अनुपात में भिखारियों की संख्या में भी वृद्धि होती जा रही थी। देने वालों के हाथ यों ही सिकुड़ने लगे थे, तिस पर कार्पोरेशन की ओर से जनता से यह अपील की जा रही थी कि मँगतों को कुछ भी न दिया जाय। कुछ पत्रों में सम्पादक के नाम पत्र लिखने वालों ने यह प्रश्न किया कि शहर के इन हज़ारों भिखारियों की गुज़र कैसे होगी? एक दूरदर्शी ने तो यहाँ तक लिख मारा कि भुखमरी फैलने से फुटपाथों पर हज़ारों मृतक सड़ने लगेंगे और शहर में महामारी फैल जायेगी। इस पर जवाब दिया गया कि भिखारियों के लिये एक भिक्षु-भवन खोला गया है, जहाँ उनकी जीविका के प्रबन्ध के अलावा उन्हें अपने जीवन को सुधारने की सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं।

सल्लो और उसकी माँ जब भीख माँगने निकलतीं तब उन्हीं की श्रेणी के दूसरे व्यक्तियों की तरह उन पर डाँट पड़ने लगती थी। सूट-बूटधारी बाबू लोग उनसे झिड़ककर कहते कि वे भिक्षु-भवन में क्यों नहीं भरती हो जातीं। अन्त में एक दिन सल्लो अपनी अम्माँ के साथ भिक्षु-भवन का पता लगाकर वहाँ पहुँची। वहाँ पर भूखों की ऐसी भीड़ थी कि उन्हें धकेलकर दरवाज़े तक पहुँचना प्रायः असम्भव था। बड़ी मुश्किल से

सल्लो धक्का देती और धक्का खाती हुई दरवाज़े पर एक खड़े वर्दीधारी आदमी के पास तक पहुँची। उससे उसने प्रार्थना की कि उसे और उसकी अम्माँ को भरती कर लिया जाय। इस पर उसे ऐसी झिड़क और गालियाँ सुनने को मिलीं कि वह निराश होकर लौटने लगी। इतने में धक्कम-धक्का और बढ़ गई और पीछे से दो-तीन आदमी—जो स्पष्ट ही भिक्षु-भवन के कर्मचारी थे—लाठियाँ लेकर भीड़ पर टूट पड़े। भगदड़ मची, सल्लो भी भागने लगी, पर पीठ पर एक अच्छी-खासी चोट पड़ ही गई।

उस दिन उसे केवल निराशा ही नहीं हुई, बल्कि विकट अन्धकारमय भविष्य की कल्पना करके वह आतंकित भी हो उठी। यह आश्चर्य की ही बात थी कि दुर्गति की चरमसीमा तक पहुँच चुकने पर भी उसे जीवन भारस्वरूप नहीं लग रहा था, और आत्महत्या की तो कल्पना ही उसके मन में कभी नहीं जगी। और फिर उस परिपूर्ण निराशा के वातावरण में भी दिन भर चक्कर लगाने और प्रत्येक व्यक्ति के आगे गिड़गिड़ाते रहने के बाद शाम तक दो-चार पैसे चने-चबेने के लिये भी मिल ही गये।

एक दिन वह रात में बड़ी देर तक स्थानीय स्टेशनों का चक्कर लगाने और चौराहों पर खड़े रहने के बाद भी विशेष कुछ नहीं कमा पाई थी और बान्दरा स्टेशन में हताश अवस्था में सोच रही थी कि अपने डेरे—अर्थात् शींव के पास एक सड़क के फुटपाथ—को वापस चली जाय या कुछ देर और किसी दयालु मुसाफिर की आशा करे, कि इतने में सहसा बैसाखी के सहारे चलने वाला एक भिखारी छोकरा उसके सामने मुस्कराता हुआ खड़ा हो गया। उसकी उम्र प्रायः अठारह साल की होगी। वह फटे-पुराने कपड़ों के ऊपर एक मैली-सी फटी टोपी पहने था। उसकी बायीं आँख कानी मालूम होती थी और बायाँ पाँव लंगड़ा। सल्लो बान्दरा स्टेशन पर उसे अक्सर देखा करती थी और वह भी शायद इतने दिनों तक उसे दूर ही से नज़र गड़ाता चला आता था। उस दिन शायद सल्लो को इतनी देर तक स्टेशन पर हताश और अनिश्चित अवस्था में खड़े देखकर उसका कुतूहल जगा और उसके पास आमने-सामने खड़े होने की हिम्मत पड़ी।

कानी आँख से और मोटे होंठों से उसका मुस्कराना सल्लो को कुछ अच्छा नहीं लग रहा था। वह उसके पास से हट जाना चाहती थी, पर सहसा काने ने अपने फटे कुर्ते के भीतर से एक मुट्ठी भर रेजगारी—इकन्नियाँ, अधन्ने और पैसे—निकालकर मुट्ठी खोलकर उसे दिखाया और पहले से भी अधिक ढिठाई से मुस्कराता हुआ दुष्टतापूर्ण अर्थ से भरी दृष्टि से उसकी ओर देखता हुआ, उसके कान के पास धीरे से बोला, "चलो !"

सल्लो उसकी हथेली में भरे हुए पैसों की ओर ललककर, एकटक देख रही थी। उनके तीव्र चुंबकीय आकर्षण से वह अपनी आँखों को फिरा ही नहीं पाती थी। काने ने जब कहा, "चलो !" तब उसका ध्यान भंग हुआ और उसने उसकी विचित्र इंगित-भरी आँख की ओर देखा।

"कहाँ ?" उसने कुतूहल और दबी हुई खीझ से भरे मिश्रित स्वर में धीरे से पूछा।

"ये सब पैसे तुम्हारे हैं। तुम चुपचाप मेरे साथ चली चलो।"

सल्लो ने एक बार सोचा कि उस दुष्ट की बात का कोई जवाब न देकर वहाँ से हट जाय। पर मुट्ठी भर पैसों की तृष्णा और कुतूहल ने ज़ोर मारा। उसने फिर पूछा, "कहाँ चलना होगा ?"

"मेरे पीछे-पीछे चली चलो। बहुत दूर नहीं चलना होगा···यहीं पास ही बान्दरा में ही।" कहकर उसने पैसों को फिर से फटे कुर्ते के भीतर—न जाने किस रहस्यमयी जेब में—डाल लिया।

सल्लो बिना कुछ अधिक सोचे-समझे उसके साथ हो ली। वह छोकरा बैसाखी के सहारे खटर-खटर करके बड़ी तेज़ी से चला जा रहा था। पुल पार करके बड़ी सफ़ाई से टिकट-चैकर की नज़र बचाकर दोनों स्टेशन के पार निकल गये। कई सड़कों और गलियों को पार करने के बाद वह काना (और लंगड़ा) एक अपेक्षाकृत अंधेरे स्थान में उसे ले गया। वहाँ गन्दी झोंपड़ियों की एक लम्बी कतार से होते हुए वे लोग एक और भी अंधेरे स्थान में पहुँचे जहाँ आधी बनी हुई झोंपड़ियाँ पड़ी हुई थीं। काने ने कहा था कि पास ही चलना होगा, पर सल्लो को काफ़ी

चलना पड़ा था और वह उकताने लगी थी ।

एक आधी बनी झोंपड़ी के भीतर प्रवेश करने पर काने ने कहा, "बैठ जाओ और सुस्ता लो ।" उसने बैसाखी दीवार के सहारे खड़ी कर दी । कुर्ते के भीतर भी शायद वह एक गुदड़ी पहने था । वहाँ से एक पुड़िया में रखे हुए चने और दूसरे में से आलू की कचरियाँ निकालकर सल्लो के आगे रख दिये और बोला, "खाओ !"

सल्लो सचमुच बहुत भूखी थी । उसने बिना आपत्ति के खाना शुरू कर दिया । काने ने कहा, "तुम खाओ, मैं पानी ले आता हूँ ।" और वह बिना बैसाखी के सहारे दौड़कर बाहर निकल गया । सल्लो को आश्चर्य हुआ कि इतनी ही देर में उसका लंगड़ापन कैसे दूर हो गया । उसने सुन रखा था कि कुछ भिखारी झूठमूठ का लंगड़ा और अन्धा बनने का स्वांग रचते हैं । तब क्या उस छोकरे की बायीं आँख भी कानी नहीं है ? आश्चर्य नहीं । और सल्लो बड़ी उत्सुकता से उसके लौट आने का इन्तज़ार करने लगी ।

जब वह टिन के एक पुराने और टूटे हुए मग में पानी लेकर आया तब सल्लो ने सामने बिजली के खंभे से आने वाले प्रकाश में देखा कि उसकी कानी आँख अपने स्वाभाविक रूप में आ गई थी ।

जब वह खा-पी चुकी तब छोकरा उससे बड़ी मीठी-मीठी बातें करने लगा । उसने पहले सल्लो का हाल पूछा कि वह कहाँ रहती है, उसका अपना कहने का कोई और भी आदमी है या नहीं, दिन भर में वह कितना कमा लेती है, आदि-आदि । जल्दी-जल्दी सल्लो ने संकोच में उसके सभी प्रश्नों का उत्तर दिया । उसके बाद छोकरे ने सल्लो के पूछने पर अपना हाल बताना शुरू किया । उसने अपना नाम चिम्मन बताया और समझाया कि वह किस चालाकी से लंगड़ा और काना बनकर बड़े मज़े में अपनी गुज़र कर लेता है । उसने बताया कि उसके अपने माँ-बाप नहीं हैं, केवल चचा-चाची और मामा-मामी हैं जो उससे पैसा खसोटने के लिये आपस ही में झगड़ते रहते हैं । उसने बताया कि उसने अब उन लोगों से एकदम

अलग रहने का निश्चय कर लिया है, और एक साथिन की खोज में है। क्या सल्लो उसकी साथिन बनना स्वीकार करेगी ?

उस रात सल्लो से बहुत देर तक उसकी बातें होती रहीं और अन्त में उसने अनुरोध-भरे स्वर में सल्लो से कहा कि उतनी रात गये उसका अपने स्थान को लौट जाना ठीक नहीं है और वह वहीं रह जाय। उसने मुट्ठी भर पैसे सब सल्लो के हाथ में थमा दिये।

उस रात सल्लो उसी के साथ रह गई और तब से चिम्मन से उसकी घनिष्ठता हो गई। प्रायः एक वर्ष बाद उसने एक बच्चे को जन्म दिया। वह बच्चे को लेकर कभी अपनी माँ के पास शींव में रहती, कभी चिम्मन के साथ बान्दरे में। बच्चा होने के बाद भी चिम्मन से उसकी अच्छी निभती रही। और बड़े मज़े में उसके दिन कटने लगे थे, क्योंकि चिम्मन प्रतिदिन काफ़ी पैसे कमाकर लाता था।

एक दिन वह चिम्मन की टूटी-फूटी झोंपड़ी में रात बिताने के बाद जब तड़के उठी तब बच्चे को चिम्मन की देखभाल में छोड़कर प्रातः-कृत्य से निबटने के लिये बाहर चली गई। प्रायः आधे घंटे बाद जब बाहर नल में नहा-धोकर लौटी तब दूर ही से बच्चे के बहुत ज़ोर से चीखने-चिल्लाने का शब्द सुनकर घबराकर दौड़ती हुई भीतर गई। वहाँ चिम्मन नहीं था और बच्चा अस्वाभाविक रूप में तीखे और मर्म-विदारक स्वर में रोता हुआ बुरी तरह हाथ-पाँव छटपटा रहा था। और निकट आने पर उसने देखा कि उसकी दोनों आँखों से ख़ून की धारा बह रही थी।

"हाय मेरे लाल ! क्या हो गया !" कहकर सल्लो छाती फाड़कर रो पड़ी और उसने बच्चे को गोद में ले लिया। पर बच्चा शांत होने के बजाय और अधिक तीव्र स्वर में चीखने और छटपटाने लगा। सल्लो ने हर तरह से उसे अपनी छाती का दूध पिलाने की कोशिश की, पर वह केवल एक क्षण के लिये दूध मुँह में डालता था और फिर तत्काल छोड़-कर चिल्लाने लगता था। वह आवाज़ उसके कलेजे पर चाकू चला रही थी। उसकी समझ में ही नहीं आता था कि मामला क्या है, और चिम्मन

बच्चे को छोड़कर कहाँ गया और क्यों ? तब क्या बच्चे को उसी ने······ पर नहीं, यह असंभव था।

"मेरे राजा। क्या हो गया तुम्हें ? किसने यह सत्यानाश कर डाला, मेरे भगवान ! अब मैं कहाँ जाऊँ, किसके पास जाऊँ, क्या उपाय करूँ।" और वह चीखते हुए उस बच्चे को गोद में लिये सिर पीटने लगी।

ऊपर दो-तीन हवाई जहाज़ बहुत नीचे उड़ते हुए भों-भों-ओं-ओं की आवाज़ से जैसे सारे आसमान को अपने ऊपर उठाये लिये जा रहे थे। सल्लो को लगता था जैसे उसके बेटे के शोक में सारी सृष्टि में हाहाकार मच गया है। बाद में उसे याद आया कि वे हवाई जहाज़ काफ़ी देर से उड़ रहे थे और उसने उन्हें देखा भी था, पर भीतर बच्चे का हाल देखकर वह सब कुछ भूल गई थी।

थोड़ी देर बाद चिम्मन आ पहुँचा। सल्लो के मन में यह विश्वास जम चुका था कि चिम्मन से इस जीवन में अब कभी भेंट नहीं होगी, इसलिये उसके लौट आने पर उसे लगा कि वह अभी इसी पृथ्वी पर है···भों-भों करने वाले विमानों के साथ शून्य में उड़कर भटक नहीं रही है।

बच्चे को बुरी तरह चीखते और सल्लो का सिर पीटते देखकर चिम्मन ने बहुत ही घबराई हुई ज़बान में पूछा, "क्या हो गया ?"

"तुम्हीं देख लो। बच्चे की दोनों आँखों से खून की धारा बह रही है। किसी ने दोनों आँखें फोड़ डाली हैं।" वह विलाप के स्वर में, प्रायः गाती हुई-सी, बोली।

"उफ़ !" कहकर चिम्मन कुछ क्षणों तक स्तब्ध खड़ा रहा, उसके बाद सहसा दाँतों को पीसता हुआ बोल उठा, "यह उस कमीने मामा की करतूत है। अब मैं समझ गया हूँ। मैं उससे बदला लिये बिना न रहूँगा। मैं उसका ख़ून करूँगा, हाँ ख़ून ! जब से तुम मेरे साथ रहने लगी, तभी से वह जला हुआ था, क्योंकि तुम्हारे आने के बाद से उसे पैसे खसोटने का मौक़ा नहीं मिला। और जब बच्चा पैदा हुआ तब तो उसे मेरा सुख नहीं देखा गया। वह और उसकी रखेल दोनों जिस तरह की कमीनी गालियाँ

हम दोनों को बराबर देते रहे हैं उन्हें तुमने कभी सुना नहीं, क्योंकि तुम कभी उस तरफ़ गई नहीं। मैं उन लोगों को अच्छी तरह जानता हूँ। मैं इसका बदला लिये बिना न रहूँगा, तुम देख लेना।" सल्लो ने देखा उसकी आँखें सचमुच उत्कट क्रोध की ज्वाला से जल रही थीं।

"तुम बच्चे को छोड़कर कहाँ चले गये थे?" सल्लो ने आँख से बड़ी-बड़ी बूँदें गिराते हुए पूछा।

"मैं थोड़ी देर के लिये हवाई जहाज़ों को देखने चला गया था, वे इतने नीचे उतर आये थे कि मुझे लगा कि कहीं ज़मीन पर गिरकर टकराने न जा रहे हों।"

चिम्मन बच्चे को लेकर सल्लो के साथ अस्पताल चला गया। डाक्टर ने बताया कि बच्चे की दोनों आँखों में सुई चुभोयी गई है। घाव भर जायेगा, पर रोशनी नहीं भरी जा सकेगी। सल्लो माथा ठोंककर रह गई।

धीरे-धीरे बच्चे की आँखों का दर्द अच्छा हो गया। पर वह सदा के लिये अन्धा हो गया। उस निरीह, अन्धे और बेबस शिशु के प्रति सल्लो की ममता और अधिक बढ़ गई। वह अपने जीवन का क्रम फिर से नियमित रूप से चलाने लगी थी कि एक और कांड हो गया। चिम्मन ने एक दिन रात में सचमुच अपने मामा के पेट में छुरा भोंक दिया और लापता हो गया। पुलिस ने सल्लो को उसका पता बताने के लिये बहुत परेशान किया, पर उसे कोई ख़बर नहीं थी। प्रायः एक सप्ताह बाद मालूम हुआ कि कल्याण स्टेशन के पास उसे पकड़ लिया गया है।

सल्लो अपने दुर्भाग्य को कोसती हुई बान्दरा का अड्डा छोड़कर फिर अपनी माँ के पास चली गई। धीरे-धीरे उसे यह अनुभव हुआ कि वह अन्धा बच्चा उसके लिये वरदान सिद्ध हुआ है। उसे लेकर जब वह भीख माँगने निकलती तब उसके प्रति लोगों की करुणा पहले की अपेक्षा अधिक उमड़ आती। जब वह कुछ बड़ा हुआ, और अम्माँ का हाथ पकड़-कर स्वयं चलने योग्य हो गया और 'बाबा! अन्धे, ग़रीब, लाचार को एक पैसा दो!' कहने लगा तब वह और अधिक कमाने लगी। उसे वह

अन्धा बेटा अमूल्य धन की तरह लगने लगा।

इधर वह अन्धा बच्चा बिना माँ के हाथ के सहारे स्वयं चलने-फिरने योग्य हो गया था; पाँचवाँ साल पार कर लिया था और छठे पर पाँव रखा था। पर दो दिन पहले वह विक्टोरिया टर्मिनस में यात्रियों की रेल-पेल के बीच में ही सहसा न जाने कहाँ ग़ायब हो गया। सल्लो ने दिन-रात एक-एक करके सारे स्टेशनों और भीख माँगने के अड्डों की ख़ाक छान डाली थी, पर उसका सारा परिश्रम व्यर्थ सिद्ध हुआ था।

आज सुबह न जाने उसे क्या अलहाम हुआ, वह उसकी खोज में बान्दरे की तरफ़ चली आई। जिस दिन चिम्मन के गिरफ़्तार होने का समाचार उसे मिला था तब से उसने बान्दरा में पाँव नहीं रखा था। आज प्राय: चार वर्ष बाद उस ओर गई थी।

सल्लो उत्तर की ओर वाले एक प्लेटफ़ार्म के छोर पर खड़ी थी। बायीं ओर कुछ दूरी पर किसी दैत्य की आँख की तरह एक हरी बत्ती जल रही थी, जो गाड़ी के जाने का सिगनल था। 'क्या मेरी गाड़ी जायेगी ? क्या मेरी गाड़ी जायेगी ?' उसके अन्तर के भी अन्तर से निकलता यह प्रश्न अपने अस्पष्ट स्वर में उठकर जैसे उसके मन के कानों में गूँज रहा था। दिन भर की व्यस्तता के बाद स्टेशन में मुसाफ़िरों की भीड़ बहुत कम हो गई थी। हर पाँच मिनट के बाद आसपास के प्लेटफ़ार्मों पर आने-जाने वाली गाड़ियों की घरघराहट और इंजन के कूकने के शब्द से कान के पर्दे फटे जा रहे थे। सल्लो इस तरह की आवाज़ से अभ्यस्त होने पर भी आज रह-रहकर चौंक उठती थी और उसकी हौल-दिली बढ़ती चली जाती थी। एक ओर उसे अपनी बीमार अम्माँ का ख़याल होता था और वह सोचती थी कि उसके पास जल्दी ही लौट चलना आवश्यक है, दूसरी ओर बच्चे की याद आते ही उसके पाँव ज़मीन पर जकड़ जाते थे।

गाड़ी बड़ी तेज़ी से घरघराती हुई चली जा रही थी। स्पष्ट ही वह फास्ट ट्रेन थी। 'गाड़ी आ गई। गाड़ी आ गई।' उसके भीतर रह-

रहकर केवल यही शब्द गूँजते रहे। बिना कुछ सोचे-समझे एकदम अन-मने भाव से वह इंजन के आगे कूदने ही को थी कि सहसा, 'बाबा! अन्धे, ग़रीब, लाचार को एक पैसा दो!' की आवाज़ सुनकर वह बिजली के वेग से पीछे को लौटकर देखने लगी। "आ जा, आ जा, बुल्लनवा, मेरे लाल। मैं यहाँ हूँ।" कहती हुई वह पागलों की तरह दूसरे प्लेटफ़ार्म की ओर दौड़ी। एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक बेतहाशा दौड़ी चली गई। "बुल्लनवा! बुल्लनवा! कहाँ गया रे?" कहकर नंगे सिर पर बिखरे हुए बालों को हिलाती हुई उसी तरह दौड़ती हुई लौटी। सहसा एक स्त्री पर उसकी नज़र पड़ी जो उसे देखकर चाय के स्टाल की आड़ में छिपने के लिये जा रही थी। सल्लो उसे देखते ही पहचान गई। वह चिम्मन की मामी थी। वही मामी जिसके आदमी का चिम्मन ने ख़ून किया था। सल्लो ने उसका गला पकड़ लिया। "बता कहाँ है मेरा बेटा? अभी-अभी मैंने उसकी आवाज़ सुनी, अभी तू डायन ने उसे कहाँ छिपा दिया? बता, जल्दी बता?" तमाशा देखने वालों की भीड़ लग गई, सल्लो में न जाने कहाँ से राक्षसी बल आ गया था। वह बाघिनी की तरह उस स्त्री पर झपटकर उसे जैसे फाड़कर खा डालने का निश्चय कर चुकी थी।

इतने में सहसा पास ही से फिर उसके कानों में यह आवाज़ आई, "बाबा! अंधे, ग़रीब, लाचार को एक पैसा दो!" जन्म-जन्म से परिचित वह प्यारा करुण स्वर! वह उस स्त्री को छोड़कर उस ओर लपकी जहाँ से वह आवाज़ आ रही थी। कुछ ही क़दम आगे बढ़ी होगी कि उसने अपने अन्धे बच्चे को बिना किसी के सहारे दोनों हाथ फैलाये, टी-स्टाल की ओर बढ़ते हुए देखा। स्वप्न नहीं वह सत्य था।

"मेरे लाल! मेरा राजा बेटा! मेरी आँखों का उजाला!" कहकर उसने उसे दोनों बाँहों से जकड़ लिया और कपाल में, गालों में, आँखों में, नाक में सर्वत्र चुंबनों की अविरल वर्षा करने लगी और हर्ष के आँसुओं की झड़ी से उसे भिगोने लगी। "मैं जानती थी तू मिलेगा, यहीं मिलेगा।

इसीलिये मैं यहाँ आई थी।"

"अम्माँ, अम्माँ!" कहकर बच्चा भी लिपट पड़ा। फिर बोला, "तूने मुझे क्यों छोड़ दिया था, बता? मैंने दो दिन से कुछ खाया नहीं है अम्माँ। सुबह सूखी रोटी का एक टुकड़ा एक औरत ने दिया था, बस। अभी तक वह औरत मेरा हाथ पकड़े थी। पता नहीं वह अभी-अभी कहाँ ग़ायब हो गई। मुझे भूख लगी है अम्माँ, कुछ खाने को दो।"

"देती हूँ, मेरे लाल! मेरे मुन्ना! अभी देती हूँ।" कहकर वह उसका हाथ पकड़कर टी-स्टाल पर ले गई और तीन आने की एक मीठी पाव रोटी खरीदकर उसे दी। उसके पास केवल इतने ही पैसे बचे थे। "अभी इतना ही खा ले और फिर दूँगी", उसने कहा।

बच्चा परिपूर्ण तृप्ति के साथ खाने लगा।

धीरे-धीरे तमाशाइयों की भीड़ हट गई। वह स्त्री भी, जिस पर सल्लो झपट पड़ी थी, न जाने कहाँ ग़ायब हो गई। सल्लो भी बच्चे को पाकर चिम्मन की भाभी का अस्तित्व ही भूल गई थी। दो तरफ़ से दो गाड़ियाँ ठहरकर काफ़ी से अधिक यात्रियों को ले गईं। स्टेशन बहुत कुछ खाली हो गया था। प्रायः साढ़े दस बज चुके थे।

"मुझे नींद लगी है।" रोटी का अंतिम टुकड़ा समाप्त करते हुए बच्चे ने कहा।

"आ जा बेटा, मेरी गोद में सो जा।" कहकर सल्लो ने उसे उठा लिया।

वह सोचने लगी कि इतनी रात गये अब कहाँ चला जाय। अम्माँ के पास जाने की इच्छा थी, पर दिन भर के चक्कर और बच्चे से अप्रत्याशित मिलन—उतनी परेशानी और फिर ऐसा सुखद मिलन! इन परस्पर दो विरोधी कारणों से वह बहुत थक गई थी। इसलिये उसने प्लेटफ़ार्म पर ही लेटकर रात बिताने का निश्चय कर लिया। उसे भी बड़े ज़ोर की भूख लगी थी, इस वक्त तक वह बच्चे की चिन्ता में पेट की ज्वाला को भूली हुई थी। पर अब वह ज्वाला दुगनी तीव्रता से सुलगने लगी थी। पर किसी तरह मन मारकर वह रह गई। वह अफ़ीम

खाने के बाद की-सी एक विचित्र मोहमग्न मानसिक स्थिति में प्लेटफ़ार्म के उत्तरी छोर की ओर बढ़ी चली जा रही थी।

सहसा एक मालगाड़ी सारे प्लेटफ़ार्म को एक तीव्र भूकंप से हिलाती हुई और पूरे ज़ोर से कूकती हुई और धड़धड़ाती हुई चली आई। अंतिम सिरे पर पहुँचने पर सल्लो बैठ गई। उसने सीमेंट पर बच्चे को बिठा दिया और स्वयं भी उसकी बग़ल में बैठ गई।

बच्चे की पीठ थपथपाती हुई वह बार-बार कहने लगी..."सो जा, सो जा, मेरे लाल ! मेरी फूटी आँखों के उजाले, सो जा।"

दूर किसी खंभे पर लाल बत्ती जल रही थी। शैतान की दहकती हुई आँख की तरह। उससे अपने बच्चे की रक्षा करने के इरादे से उसने उसे फिर एक बार छाती से जकड़ा लिया।

बार-बार उसका मुँह चूमती हुई केवल कहती रही, "सो जा ! सो जा !"......

क्रय-विक्रय

"मैं आज अच्छी तरह जान गई हूँ कि तुमने क्या सोचकर मुझसे ब्याह किया था। ब्याह के पहले तुमने जब पहले पहल देखा था, उस दिन तुम्हारी दृष्टि में क्या भाव छिपा था, वह बात तब मेरे आगे स्पष्ट नहीं हो पाई थी। आज मैं उसका मर्म बिल्कुल ठीक समझ पाई हूँ। तुम अपनी आँखों में मेरी नाप-जोख कर रहे थे, मेरा वज़न ले रहे थे, और मेरा मूल्य आँक रहे थे···इस उद्देश्य से कि यह कच्चा माल पक्का होने पर बाज़ार में कितने दामों पर बिक सकेगा···" कोच के कुशन पर अपना नंगा सिर रखकर अधलेटी अवस्था में मालिनी ने कहा। उसकी भौंहों में, आँखों में, नाक के छिद्रों में और ओठों में घोर घृणा, भयंकरता, क्रूरता और दृढ़ निश्चय के मिश्रित भाव वर्तमान थे।

राजेन्द्र को अपनी पत्नी की ये बातें एकदम अप्रत्याशित-सी लगीं। वह विस्मित भावों से आँखें फाड़-फाड़कर कुछ देर तक बेवक़ूफ़ों की तरह उसकी ओर देखता रह गया। जब कुछ सँभला तो मुँह पर भय और क्रोध से पूर्ण एक अत्यन्त विकृत भाव झलकाता हुआ बोला, "क्या कहा? मैंने तुम्हें बेचने के लिये तुमसे विवाह किया? कृतघ्नता की भी एक सीमा होती है। तुम्हारे पिता को अपनी लड़की के लिये कोई वर नहीं मिल रहा था। ग़रीबी और हीन कुल के कारण कोई तुमसे विवाह करने को तैयार नहीं हो रहा था। तुम्हारे पिता की अत्यन्त दयनीय दशा देखकर और तुम्हें एक नेकलड़की समझ मैंने तुमसे विवाह करना स्वीकार किया। विवाह करने के बाद मैं इस बात की पूरी कोशिश करता रहा कि तुम्हें मेरे साथ किसी प्रकार का कष्ट न होने पावे। तब मेरी आर्थिक स्थिति कैसी थी, यह बात तुमसे छिपी नहीं है। तिस पर भी

मैंने भरसक तुम्हारी किसी भी माँग की उपेक्षा नहीं की। स्वयं फटेहाल रहकर भी तुम्हें अच्छे कपड़े पहनने को दिये, स्वयं रूखा-सूखा खाकर भी तुम्हारे लिये खाने-पीने में किसी चीज़ की कमी नहीं रहने दी। दोनों जून अपने हाथ से खाना बनाकर तुम्हें खिलाया। तुम्हें भरसक घर का कोई काम नहीं करने दिया और रोज़ या तो तुम्हें सिनेमा दिखाता रहा या प्रतिष्ठित समाज के स्त्री-पुरुषों से तुम्हें मिलाता रहा। इतने निश्चित प्रमाणों के होते हुए भी तुम कह सकती हो कि तुम्हें बाज़ार में बेचना मेरा उद्देश्य था, इससे बढ़कर अकृतज्ञता की कल्पना मैं नहीं कर सकता।"

मालिनी उचककर सीधी तरह बैठ गई और पहले की अपेक्षा अधिक उत्तेजित अवस्था में बोली, "तुमने मुझे खुश करने, मुझे आराम से रखने, मुझे फैशनेबुल बनाने के लिये सब कुछ किया, मैं जानती हूँ; इसी कारण तुम्हें नम्बरी धूर्त, नीच और अर्थपिशाच समझती हूँ। तुम मुझे जो अच्छे-अच्छे कपड़े पहनाते रहे और प्रतिष्ठित समाज के स्त्री-पुरुषों —खासकर पुरुषों—से मिलाते रहे, इसका कारण क्या है? शुरुआत में यह बात भले ही मेरी समझ में न आई हो, पर, क्या तुम आज भी मुझे उसी तरह अन्धी समझते हो, जैसी कि मैं ब्याह के समय था? भूलकर भी ऐसी न समझना। आज मैं तुम्हारी नस-नस पहचान गई हूँ। तुम्हारे धूर्त मन के भीतर आरम्भ से ही एक गुप्त और हीन उद्देश्य छिपा हुआ था। क्या उस दिन की बात भूल गये हो, जब तुम कम्पनी बाग में शाम के झुटपुटे में मुझे मिस्टर सिंह के साथ मोटर में छोड़ स्वयं किसी काम के बहाने उतर पड़े थे? उस दिन पहली बार मुझे तुम्हारे भीतर छुपे हुए साँप की झलक दिखाई दी। तुम्हारे चले जाने के बाद कुछ देर तक तो मैं स्तब्ध बैठी रही। मेरे चारों ओर एक अजीब-सा सन्नाटा छा गया। मुझे चक्कर-सा आने लगा। मैं ऐसी अकचका-सी गई थी, कि घबराहट के कारण मेरे मुँह से एक शब्द भी न निकला। अन्तः-करण से चाहते हुए भी मैं संकोच, भय और विस्मय के मारे यह न कह पाई कि 'तुम यह क्या करते हो, मुझे मिस्टर सिंह के साथ अकेली छोड़-

कर कहाँ जाते हो ?' मैं चुपचाप मौन साधे बैठी रही और द्रौपदी की तरह मन ही मन प्रार्थना करती रही, 'भगवान ! मेरी लाज रखना।' तब तक मेरा हृदय बिल्कुल निष्कलंक और निष्पाप था। मैं कैसे ही हीन कुल की होऊँ, भारतीय नारी का सहज संस्कार पति-भक्ति की स्वाभाविक भावना, पर पुरुष के संसर्ग से बचने की सहज प्रवृत्ति मेरे भीतर पूर्ण मात्रा में वर्त्तमान थी। इसलिये मिस्टर सिंह के साथ साँझ के झुटपुटे में कम्पनी बाग में मोटर के भीतर अकेले पड़ जाने से मेरी घबराहट का क्या हाल होगा, इसकी कल्पना तुम आसानी से कर सकते थे, अगर तुममें मनुष्यता और पुरुषत्व का लेश भी वर्त्तमान होता। तुम्हारे चले जाने के बाद मिस्टर सिंह मीठी-मीठी बातों से शुरू कर अन्त में किस तरह की बातें कीं, इसका पूरा इतिहास मैं तुम्हें सुनाना नहीं चाहती। सिर्फ़ इतना जान लो कि उस दिन मेरा पतन नहीं हुआ। मैं इस क़दर घबराई हुई थी कि मिस्टर सिंह को आगे बढ़ने का साहस नहीं हुआ। मैं सीट के एक कोने में दुबककर रास्ते भर सिसकती रही और अन्तरात्मा से तुम्हें कोसती रही। जब उन्होंने मुझे घर पहुँचाया तो तुम्हें याद होगा कि मैं तुमसे एक शब्द भी नहीं बोली थी। सीधे अपने पलंग पर जाकर तबीयत खराब होने का बहाना बनाकर लेट गई थी। रात भर मैं रोती और सिसकती रही और उस अजीब परिस्थिति का ठीक-ठीक अर्थ लगाने की चेष्टा भी मन ही मन करती रही, जिसमें तुम मुझे अचानक छोड़कर चले गये थे। कोई पति अपनी स्त्री को किसी भी हालत में इस तरह छोड़ सकता है, इस बात की कल्पना ही उसके पहले मैं नहीं कर पाती थी। तब मैं इस हद तक भोली और मूर्ख थी। उस घटना के बाद जब मैं धीरे-धीरे उस पहले धक्के से कुछ सँभली तो दूसरी बार मिस्टर सिंह से मिलने पर मैंने कुछ दूसरी ही आँखों से देखा। तुम्हारी धूर्तता का आभास तब तक मेरे आगे कुछ-कुछ स्पष्ट हो चुका था और तुम्हारी पुरुषत्वहीनता का पता भी उस एक घटना से मुझे मिल चुका था। इसलिये मेरे निष्कलंक हृदय में उसकी जो प्रतिक्रिया हुई, उसका फल यह

हुआ कि एक निराले ही पाप का बीज मेरे अनजान में मेरे भीतर किसी ने बो दिया। इस बार मिस्टर सिंह की आकृति प्रकृति एक दूसरे ही रूप में मेरे सामने आई। उस दिन मैं बड़े कुतूहल से उन्हें देखती रही, हालाँकि मैं बड़े संकोच के साथ उनसे बातें कीं। तीसरी बार मैं अधिक ढीठ हो उठी और चौथी बार मेरी ढिठाई चरमसीमा को पहुँच गई! मैं जान गई थी कि तुम यही चाहते हो, सो वही हुआ। पर तबसे तुम्हारे प्रति मेरे मन में घृणा का भाव किस कदर उमड़ पड़ा, इसका अनुमान तुम शायद इस समय भी लगाने में असमर्थ होगे, क्योंकि तुम केवल अर्थ और उसमें भी निपट स्वार्थ को छोड़कर और किसी भी विषय की सूक्ष्मता को समझने की बुद्धि नहीं रखते। नारी-हृदय की सूक्ष्मतम मनोवृत्तियों के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या है। आरम्भ से ही तुम्हारी एकमात्र महत्वाकांक्षा रही है, किसी भी उपाय से रुपया बटोरना। तुम यह चाहते रहे हो कि एक निज का बँगला हो, जो बाहर-भीतर सुन्दर रूप से सजा हो; एक कार हो; बैंक में एक अच्छी-खासी रक़म जमा हो; एक ऐसी फैशनेबुल जोरू हो, जिसके माध्यम से तुम्हें अर्थ और सामाजिक प्रतिष्ठा दोनों साथ-साथ प्राप्त होते रहें। इस चरम लक्ष्य को सामने रखकर तुमने एक हिसाबी बनिये की तरह फूँक-फूँककर, सोच-समझकर, एक-एक कदम आगे बढ़ाया है। मुझसे तुमने जो बात की है, वह केवल इसलिये कि मिस्टर सिंह और उन्हीं के साथ दूसरे प्रतिष्ठित सरकारी अफ़सरों के हाथ मुझे सौंपकर अपना पद बढ़ा सको।"

राजेन्द्र के मुँह का रंग एक बार भय से एक दम फ़ीका पड़ जाता था और दूसरी बार क्रोध से तमतमा उठता था। मालिनी की अंतिम बात सुनकर वह प्रचंड क्रोध से झल्ला उठा और पास वाली मेज़ पर ज़ोर से हाथ पटककर भैरव स्वर में बोल उठा, "तुम झूठ कहती हो! झूठ कहती हो!! झूठ कहती हो!!!" इसके आगे वह कुछ नहीं कह सका।

मालिनी ने अत्यन्त दृढ़ता के साथ कहा, "मैं अक्षर-अक्षर सच कह

रही हूँ। पचास रूपल्ली के एक साधारण क्लर्क की हैसियत से तुम जो आज केवल दस वर्षों के भीतर पाँच सौ रुपये तनख़्वाह पाने वाले अफ़सर बने बैठे हो, यह केवल मेरी ही बदौलत। मिस्टर सिंह ने, तथा और दो-एक प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने, वे कौन हैं यह बात तुमसे छिपी नहीं है, तुम्हारी तरक़्क़ी के लिये जो कोशिशें की हैं, उन्हें क्या तुम सचमुच भूल गये हो? नहीं, यह नहीं हो सकता। तुम हर्गिज़ नहीं भूल सकते। क्योंकि तुमने अपने घृणित स्वार्थ को ध्यान में रखते हुए जान-बूझकर उन लोगों के हाथ···

"झूठ! झूठ!! सरासर झूठ!!!" राजेन्द्र ने मेज पर फिर एक बार हाथ पटकते हुए कहा। पर इस बार के पटकने में ज़ोर कुछ कम हो गया था। पता नहीं क्यों।

"तुम झूठ कहकर एक ज्वलन्त सत्य को उड़ा देना चाहोगे और मैं मान लूँगी? ख़ूब! मुझे सबसे बड़ा आश्चर्य यह सोचकर होता है कि कोई आदमी इस हद तक नपुंसक कैसे हो सकता है! यह जानते हुए भी कि तुम्हारी स्त्री दूसरे पुरुषों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किए हुए है, तुम्हारे मन में कभी ईर्ष्या का भाव लेशमात्र को उत्पन्न नहीं हुआ। अरे भले आदमी, कभी एक बार भी तुमने सोचा होता कि जिस पुरुष से तुम्हारी पत्नी की घनिष्ठता है, वह अपने मन में तुम्हें कितना बड़ा गधा समझता होगा। आर्थिक उन्नति की भावना के कारण तुमने नीति को तिलांजलि दी, प्रतिष्ठा खोई और अपने पुरुषत्व का दिवाला निकल जाने की घोषणा सारे समाज में कर दी। और सबसे बड़ी दिल्लगी की बात यह कि सब कुछ जानते हुए भी तुमने अपनी पत्नी के साथ दाम्पत्य सम्बन्ध स्थापित रखा। जब तक तुम्हारे अफ़सरों के साथ मेरा सम्बन्ध बना रहा, तब तक तुम्हारी कुल की मर्यादा और सामाजिक प्रतिष्ठा की सारी भावनाएँ न जाने किस गधे के सिर के सींगों की तरह ग़ायब हो गई थीं, और आज जब एक सरल स्वभाव, सहृदय पर ग़रीब युवक से मेरा परिचय—केवल परिचय—हुआ है, तो तुम्हारी इतने दिनों तक की दबी हुई सारी नपुंसक

ईर्ष्या न जाने कहाँ से उमड़ उठी है । सुरेन्द्र से जब मैं मिलती हूँ और आंतरिक स्नेह और करुणा से दो-चार बातें करती हूँ, तो तुम उचक-उचक उठते हो और आजकल तमाम दिन और तमाम रात इस एक बात को लेकर मुझे परेशान करते हुए नारी के सतीत्व के सम्वन्ध में लेक्चर पर लेक्चर बघारते चले जाते हो। यह सब केवल इस कारण कि जिस नये व्यक्ति से मेरा परिचय हुआ है, उससे कोई आर्थिक लाभ तुम्हें नहीं हो सकता। कहाँ गई थी तुम्हारी वह ईर्ष्या जब जौहरी का वह लड़का पाँच हजार रुपये के जड़ाऊ कंगन तुम्हारे सामने मुझे बिना दाम के दे गया था और दूसरे ही दिन तुम्हारी सम्मति से मुझे अपनी 'फिटन' में सैर कराने ले गया था ? कहाँ गई थी तुम्हारी वह ईर्ष्या जब मैं मिस्टर सिंह की कार में रात के दो-दो, ढाई-ढाई बजे घर वापस आती थी ? तब तो तुम सब कुछ जानते हुए भी बड़े प्यार और दुलार से मुझसे बातें किया करते थे।"

इतने में प्राय: पाँच साल के एक सुन्दर बच्चे ने दाई के साथ भीतर प्रवेश किया। इससे आधे क्षण के लिये शायद मालिनी की वाग्धारा की प्रगति में कुछ रुकावट पड़ी। पर तत्काल उसकी उत्तेजित अवस्था ने चरम रूप धारण कर लिया। उसकी आँखें पूर्ण उन्मादग्रस्त व्यक्ति की आँखों की तरह अस्वाभाविक रूप से चमक उठीं। तमाम चेहरा दहकते हुए अंगारों से प्रकाश की तरह लाल हो उठा और दाई की उपस्थिति का तनिक भी ख़्याल न कर वह बच्चे की ओर उंगली से संकेत करके प्रायः चीख़ती हुई बोल उठी, "कहाँ गई थी तुम्हारी ईर्ष्या जब तुम जानते थे कि यह बच्चा तुम्हारा नहीं, बल्कि किसी दूसरे व्यक्ति का है, जिसके साथ तुम चाहते थे कि मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध हो जाय ?"

यह कहती हुई वह उसी निपट पागल की अवस्था में उठ खड़ी हुई।

राजेन्द्र भी उचककर खड़ा हुआ और एक विचित्र अस्वाभाविक स्वर में गुहार मारता हुआ बोला, "मालिनी ! मालिनी ! तुम यह क्या कहती हो ? क्या सचमुच···क्या सचमुच···" उसने पलक भर के लिये एक बार

बच्चे की ओर—जो भौंचक्क-सा खड़ा था—देखा, फिर तत्काल उसकी ओर से आँख फेरकर मालिनी के प्रचंड चंडी रूप की ओर सहमता, सकुचाता हुआ देखने लगा। उसके बाद बोला, "मैं क़सम खाकर कहता हूँ, मुझे इन सब बातों का पता आज तक नहीं था। तुम्हारे इतना कहने पर भी मैं इन सब बातों को झूठ—ग़लत समझता हूँ, क्योंकि मुझे तुम्हारे चरित्र पर पूरा विश्वास आरम्भ से ही रहा है। यही कारण था कि मैंने निश्चिन्त होकर बिना किसी बात की आशंका के तुम्हें अपने परिचित पुरुषों के साथ हेलमेल बढ़ाने दिया और कभी किसी बात का संदेह मेरे मन में पैदा नहीं हुआ। आज न मालूम तुमको क्या हो गया है, जो तुम इस तरह की बेसिर-पैर की बातें कर रही हो।"

उसके चेहरे से हवाइयाँ उड़ रही थीं और उसके मुख की अभिव्यक्ति इस क़दर दयनीय हो उठी थी कि मालूम होता था जैसे अब वह रोने ही को है। मालिनी को इस बात से तनिक भी दया नहीं आई, बल्कि एक घोर प्रतिहिंसापूर्ण प्रसन्नता का भाव उसके मुख पर दमक रहा था। उसने अत्यन्त स्थिर, किंतु कठोर स्वर में कहा, "मैं क़तई बेसिर-पैर की बात नहीं कर रही हूँ। बल्कि घोर यथार्थ सत्य तुम्हारे आगे प्रकट कर रही हूँ। तुमने अपनी कुलीनता के दामों पर मुझे खरीदा और पाँच सौ रुपये की नौकरी के मोल मुझे बेचा। अपने हीन स्वार्थ के लिये तुमने मुझे वेश्या बनाकर छोड़ा है। छुटपन से मैं इस बात का स्वप्न देखा करती थी कि किस प्रकार मैं अपने पति का एकान्त प्रेम पा, पति के जीवन की सच्ची संगिनी बनकर, प्यारे-प्यारे बच्चों की माँ बनूँगी; सुख, सन्तोष तथा पवित्र गृहस्थ जीवन पाऊँगी। कम्पनी बाग़ वाली उस घटना ने—जिसे आज दस वर्ष बीत चुके हैं—मेरे उन सारे स्वप्नों को चकनाचूर कर दिया। इन दस वर्षों के भीतर मेरी बाहरी आत्मा ने राग-रंग से भरा मुक्त जीवन बिताया है, संदेह नहीं, पर मेरे भीतर दबी नारी की आत्मा ने जल-जलकर श्मशान बनते हुए तुम्हें जो अभिशाप दिया है, उसका हज़ारवाँ अंश भी अगर मैं ठीक से तुम्हारे आगे, और तुम······"

इतने में नौकर ने आकर खबर दी कि सुरेन्द्रनाथ आये हैं। राजेन्द्र इतनी देर तक मुर्दे की तरह निष्प्राण और प्रेतात्मा की तरह निःसत्व चेहरा लिये खड़ा था। सुरेन्द्रनाथ का नाम सुनते ही वह सजीव हो उठा। उसने नौकर से कहा, "सुरेन्द्र बाबू से कह दो कि आज बीबी जी की तबीयत खराब है, वह नहीं मिल सकतीं।" नौकर हुक्म बजा लाने के लिये वापस जाने ही को था कि मालिनी ने उसे टोकते हुए कहा, "ठहरो! सुरेन्द्र बाबू से कहो कि बीबी जी आ रही हैं।"

यह कहकर वह बड़े शीशे के पास गई और सज-सँवरकर कंघी-चोटी करने के बाद मचमचाती हुई बाहर चली गई। राजेन्द्र बेवकूफ़ों की तरह देखता ही रह गया।

किड्नैप्ड

बॉम्बे मेल के छूटने का समय हो गया था। पहले दर्जे के एक डिब्बे के बाहर एक फैशनेबुल हिंदुस्तानी महिला खड़ी थी, जिसे आठ-दस नवयुवक घेरे हुए खड़े थे। ग़ौर से देखने पर महिला विशेष सुंदरी नहीं जान पड़ती थी, पर उसके पोशाक-पहनावे की तड़क-भड़क, पौडर की चमक, लिपिस्टिक की रंगीनी आदि में एक ऐसी विशेषता थी जो प्लेटफ़ार्म पर टहलने वाली जनता का ध्यान बरबस अपनी ओर खींच लेती थी। जिस नवयुवक से वह मंद मधुर मुस्काती हुई बातें कर रही थी, उसके मुख पर पुलक और हर्ष का एक प्रदीप्त भाव झलक रहा था और उसकी आँखें एक अनोखे भाव की रस-विह्वलता से चमक रही थीं। दूसरे नवयुवकों के चेहरे भी एक निराली प्रसन्नता के कारण तमतमाए हुए-से दिखाई देते थे।

दो युवक द्वितीय श्रेणी के वेटिंगरूम के दरवाज़े के पास से वह दृश्य देख रहे थे। उनमें से एक गहरे नीले रंग की 'सर्ज' का सूट और नीले ही रंग की 'टाई' पहने था और दूसरा कश्मीरी पट्टू का बना हुआ जवाहर जाकट, मटमैले रंग का ऊनी कुर्त्ता, खद्दर की किश्तीनुमाँ टोपी, और खद्दर की ही धोती पहने था, और ऊपर से एक सफ़ेद चादर ओढ़े था। सूटधारी युवक की अवस्था प्रायः तीस साल की होगी, और खद्दरधारी युवक उससे दो-एक वर्ष का बड़ा दिखाई देता था। सूटधारी युवक बड़े ग़ौर के फैशनेबुल महिला के प्रत्येक हाव-भाव पर ध्यान दे रहा था। उसके मुख पर एक अजीब कौतूहलपूर्ण, घृणा-भरी और उदासी-सी मुसकान छाई हुई थी।

खद्दरधारी युवक ने पूछा, "आप कुछ अनुमान लगा सकते हैं, यह महिला कौन है ?"

"प्राय: दस वर्ष पहले की बात है; तब मेरी उम्र बीस या इक्कीस वर्ष के क़रीब रही होगी। मैं यूनिवर्सिटी में पढ़ता था। मेरा स्वास्थ्य बहुत अच्छा था, और मेरे साथियों का कहना था कि मैं देखने में भी काफ़ी सुंदर था। जीवन और यौवन के संबंध में मेरा दृष्टिकोण रंगीन और साथ ही उन्मुक्त और उदार था। मैं भाव-जगत् में विचरण किया करता था, और कविताएँ भी लिखा करता था। पर जितनी ही दिलचस्पी मुझे साहित्य में थी, उतनी ही फुटबाल, क्रिकेट, सिनेमा और राजनीति में भी थी। इन सब विषयों पर मैं अपने नवयौवन के रंगीन और भावुक चश्मे से ही विचार करता था। एक राजनीतिक क्षेत्र की एक विशेष महिला के प्रति मेरे भावुक हृदय में श्रद्धा का भाव इस हद तक उथल उठा था कि मैं अक्सर आजीवन उनकी चरण-सेवा करने का स्वप्न देखा करता था। एक दूसरी ख्याति-प्राप्त महिला के संबंध में कभी-कभी ठीक उसी प्रकार के विचार मेरे मन में उमड़ उठते थे। क्रिकेट के खेल में एक बार ३०० रन का रेकार्ड स्थापित करने के लिये विख्यात खिलाड़ी डान ब्रैडमैन का पार्श्वचर बनने की अभिलाषा भी कुछ कम अवसरों पर मेरे मन में नहीं जगा करती थी। पर मेरे इस 'हीरो-वर्शिप' की भावना की अपेक्षाकृत निश्चित और स्थिर परिणति हुई सिनेमा-जगत् में। धीरे-धीरे सिनेमा की दुनिया ने मुझे अपने मध्याकर्षण के केन्द्र में इस हद तक खींच लिया कि मेरे भीतर का और आसपास का सारा संसार उस विचित्र, छायात्मक और मनमोहक दुनिया के भीतर समा गया। उठते-बैठते, सोते-जागते सब समय मैं एक निराले जगत के स्वप्न देखने लगा। प्रत्येक प्रसिद्ध अभिनेता और अभिनेत्री की सूक्ष्म से सूक्ष्म रेखा, स्पष्ट से स्पष्ट हाव-भाव मेरे मन में जैसे अमिट रूप से अंकित रहते थे। प्रत्येक लोकप्रिय फिल्म का कथानक मुझे नयी-नयी महत्वाकांक्षाओं के लिये प्रेरित करता था। प्रत्येक भावपूर्ण फिल्म-गीत की स्वर-लहरी सब समय मेरे कानों में गूँजती रहती थी।

"मेरी ऐसी मानसिक अवस्था में एक बार एक प्रसिद्ध फिल्म अभिनेत्री लखनऊ आई। उसका असली नाम तो मैं न बताऊँगा, पर मैंने

उसका जो नाम बाद में रखा था, उसे आप जान लीजिये। उसका नाम मैंने रखा था सम्मोहिनी। आजकल किसी भी फिल्म-एक्ट्रेस का परिचय देते हुए सिनेमा-पत्रों के सम्पादक लिख देते हैं कि वह सुशिक्षिता और सुसंस्कृता है। पर इस समय भारत में बहुत-सी फिल्म-अभिनेत्रियाँ ऐसी हैं, जिनसे यदि आप घनिष्ठ रूप से परिचित हो जायें तो आपको पता चलेगा कि वे वास्तविक शिक्षा और संस्कृति से कोसों दूर हैं। और संस्कृति का जो झोल वे अपने स्वभाव के ऊपरी स्तर पर चढ़ाये रहती हैं उसकी पोल खुलते देर नहीं लगती। वे सब अधिकांश रूप में संचालकों के हाथ की कठपुतलियाँ होती हैं। संचालक यदि चतुर हो तो एक साधारण से साधारण मूर्ख अभिनेत्री को भी ऊपरी बातों की सुगठित शिक्षा के द्वारा प्रसिद्धि की चरम सीमा तक पहुँचा सकता है। अधिकांश ख्याति-प्राप्त फिल्म-अभिनेत्रियाँ अपने वास्तविक व्यक्तित्व के बल पर नहीं, बल्कि फिल्म-संचालकों से प्राप्त नक़ली मुखड़ों को पहनने के कारण भोली जनता की पूजनीया बन जाती हैं। यह बात मुझे बाद में मालूम हुई। पर सम्मोहिनी के संबंध में यह बात नहीं कही जा सकती थी। वह सच्चे अर्थों में सुशिक्षिता और सुसंस्कृता थी। वह वास्तव में एक भले घर की लड़की थी, एम० ए० तक पढ़ी हुई थी और आंतरिक विश्वास से अभिनेत्री-पद को एक गौरवपूर्ण पद समझकर अपने माँ-बाप से झगड़-कर फिल्मिस्तान में चली गई थी। इन सब कारणों से हमारी यूनिवर्सिटी के छात्रों पर उसके व्यक्तित्व का बड़ा प्रभाव पड़ा। वह देखने में विशेष सुन्दरी नहीं थी, पर उसके मुख के भाव में संस्कृति और शालीनता का एक ऐसा विचित्र आकर्षण पाया जाता था जिसकी उपेक्षा सहज में नहीं की जा सकती थी।

"मैंने अपने कुछ सहपाठियों को राज़ी करके छात्रों की ओर से उसे एक पार्टी दी। उस पार्टी में उससे प्रथम बार मेरा व्यक्तिगत परिचय हुआ। उसने पूर्ण आत्मविश्वास के साथ मुक्त रूप से हम लोगों के साथ बातें कीं, पर सुरुचि और शालीनता का निर्वाह उसने अन्त तक किया।

एक क्षण के लिये भी उसने हममें से किसी के मन में यह धारणा न जमने दी कि वह एक पेशेवर एक्ट्रेस है। एक सुशील और सद्गृहस्थ लड़की के-से स्निग्ध-शीतल व्यवहार और बातचीत से वह हम लोगों के मन पर बहुत ही अच्छा प्रभाव छोड़ती चली गई। मेरे साथ उसने विशेष रूप से स्नेहपूर्ण बातें कीं, जैसी बातें एक आदरणीया स्यानी स्त्री एक किशोर क़दवाले लड़के के साथ कर सकती है। मुझे इस बात से बड़ी प्रसन्नता हुई, मैं इससे कुछ अधिक चाहने की बात उसके संबंध में सोच भी नहीं सकता था।

"उसके बाद जब तक वह लखनऊ में रही तब तक मैं उसके होटल में उससे मिलने के लिये नित्य जाता और उससे बातें करके किसी न किसी विषय की नयी और उपयोगी शिक्षा लेकर ही लौटता। प्रायः एक हफ़्ता बाद जब उसने बम्बई को लौट चलने का विचार किया तो एक विशेष साहित्यिक संस्था ने उसे फेयरवैल पार्टी देने का निश्चय किया। उस पार्टी में मैं भी निमंत्रित था। मैंने वहाँ एक कविता पढ़ी। कविता भावपूर्ण रही हो चाहे न रही हो, पर मैंने उसे निश्चय ही भावाकुल होकर लिखा था और आवेश के साथ उसे पढ़ा था। कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार थीं—

अभी विदा दें कैसे रानी ?
अभी अभी तो हिय सागर में उमड़ी हैं लहरें तूफ़ानी।
अभी अभी मेरे मृत मन में हरियाली छाई कन कन में।
अभी अभी इस बीहड़ बन में गूँजी पिक की पहली बानी।
अभी विदा दें कैसे रानी ?

"ऐसी तन्मयता से, अंतर की ऐसी सच्ची भावना से मैंने वह कविता गाकर पढ़ी थी कि श्रोताओं ने अत्यंत गंभीर और मौन भाव से उसे सुना और जिसको लक्ष्य करके वह कविता लिखी गई थी, उसकी आँखों में एक उच्छ्वसित आवेग, एक पुलक-विमल सजलता झलक उठी। उस समय से सम्मोहिनी एक दूसरी ही दृष्टि से मुझे देखने लगी। पार्टी समाप्त होने

पर वह बड़े प्रेम से मेरा हाथ पकड़ मुझे अपनी मोटर में बिठाकर अपने होटल में ले गई। जो दूसरे छात्र उसे होटल तक पहुँचाने या मिलने आये उन सबको उसने दो-दो बातें करने के बाद बड़ी शालीनता से टरका दिया। जब मैं उसके पास अकेला रह गया, तो उसने भावनापूर्ण शब्दों में अपने अंतर की यह बात स्वीकार की कि अपने जीवन में आज पहली बार वह किसी पुरुष के हृदय की सचाई से प्रभावित हुई है। उसने कहा, 'मैं जहाँ भी गई हूँ, जनता ने मेरा आदर किया है, मुझे दावतें दी हैं और अभिनंदन-पत्र भी दिये हैं। पर मुझसे यह बात छिपी नहीं रही है कि बाहर से वे लोग कैसे ही सम्मान का भाव प्रकट क्यों न करें, भीतर से वे मुझसे भयंकर घृणा करते रहे हैं, मुझे एक बाज़ारू एक्ट्रेस—बल्कि वेश्या—समझकर नाली के कीड़े से भी अधिक गंदी और तुच्छ समझते रहे हैं, पर आज तुमने, आपने—आप उम्र में और डीलडौल में इतने छोटे लगते हैं कि आपसे 'आप' कहते हुए संकोच मालूम होता है···' कहकर वह मुस्कराई, 'आज आपने जो कविता पढ़ी उसने जैसे मुझे अपने को एक नये और प्रकट रूप में जानने की प्रेरणा दी। उसे सुनकर अपने प्रति स्वयं मेरा सम्मान बढ़ गया।'

"मैंने ससंकोच, बड़े मीठे शब्दों में उसे इसके लिये धन्यवाद दिया कि उसे मेरी कविता पसंद आई।

"दूसरे दिन बॉम्बे मेल से—इसी गाड़ी से, जो अभी छूटी है—उसे जाना था। मैं और मेरे साथ के आठ-दस छात्र उसे 'सी आफ़' करने के उद्देश्य से उसके साथ स्टेशन आये, पर उस दिन मेरे साथियों ने उसके स्वभाव में बड़ा परिवर्तन पाया। उसके पहले वह अपने सब मिलनेवालों से स्नेह या सौजन्यपूर्वक बातें किया करती थी, पर उस दिन सबकी उपेक्षा करके, शिष्टाचार की तनिक भी परवाह न कर, सब समय अकेले मेरे ही साथ दुनिया भर के छोटे-मोटे, साधारण और तुच्छ विषयों पर—जैसे यूनिवर्सिटी की पढ़ाई, होस्टल का जीवन, फ़र्स्ट, सेकेंड और इंटर क्लास के वेटिंग रूमों में अंतर, लखनऊ के होटलों के वेटरों की अशिष्टता, चाय-

पान के गुण और अवगुण आदि इन्हीं विषयों पर—ट्रेन 'स्टार्ट' होने के समय तक, फर्स्ट क्लास के एक डिब्बे के बाहर खड़ी-खड़ी बातें करती रही। मैं मुग्ध भाव से सुनता रहा, केवल बीच-बीच में कभी-कभी एक-आध वाक्य एकरसता को भंग करने के उद्देश्य से बोल देता था।

"जब गार्ड ने सीटी दी, और प्लेटफ़ार्मों पर टहलने वाले यात्रीगण अपने-अपने डिब्बों में जाकर बैठने लगे, तो सम्मोहिनी ने अपनी हथेली से मेरी हथेली कसकर पकड़ ली, और यह कहकर कि 'अभी काफ़ी वक्त है' मुझे भी अपने साथ कम्पार्टमेंट के भीतर घसीट ले गई।

"उसे 'सी आफ़' करने को लाये गये सब छात्र बेवक़ूफ़ों की तरह देखते रह गये।

"भीतर जाकर उसने मुख का भाव और बातचीत का ढंग ही एकदम बदल दिया। उसके मुख का सहज विनोदपूर्ण भाव जैसे किसी जादू से छू-मन्तर हो गया और अचानक एक सबल वेदना उसकी रसीली आँखों में घिर आई। उसने अत्यन्त गम्भीर भाव से कहा, 'मुझे विदा करते हुए तुम्हें सचमुच क्या दुःख हो रहा है? अपने हृदय पर हाथ रखकर सच-सच बताना।'

"उसके प्रश्न पूछने के ढंग से मैं कुछ चौंका, पर उसकी आँखों की वेदनामय दृष्टि में न जाने क्या मोहिनी भरी थी, उसने मेरी भावुकता को तल से सतह तक उभाड़ दिया। मैंने उसी गम्भीर भाव के साथ कहा, 'मैं अपने अन्तःकरण से कहता हूँ कि आपके चले जाने से मैं बहुत दुखी हूँ।'

"इतने में इंजन ने सीटी दी। मैं उतरने के इरादे से उठने लगा, पर सम्मोहिनी ने कसकर मेरी कलाई पकड़कर मुझे फिर से अपने पास अपनी सीट पर बिठा दिया और कहा, 'अभी जल्दी क्या है'। धीमी चाल से चलती हुई ट्रेन से उतरने का अभ्यास मुझे था, इसलिये मैं विशेष नहीं घबराया। कुछ देर बाद जब गाड़ी चलने लगी तो मैंने हाथ जोड़-कर चलने की आज्ञा माँगी, पर मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, जब इस बार भी सम्मोहिनी ने कसकर मेरा हाथ पकड़ लिया, और कहा,

'जल्दी क्या है, अगले स्टेशन पर उतर जाना। लौटने में कुछ देर ज़रूर हो जावेगी, पर एक दिन मेरी ख़ातिर देर ही सही। क्यों ?'

"उसका यह आग्रह मुझे वास्तव में प्रिय लगा, और मैं अगले स्टेशन पर उतरने की बात पर राज़ी हो गया। मेरे साथ के छात्रों के प्रति उसने ऐसी उपेक्षा दिखाई कि गाड़ी चलते समय भी उनकी ओर झाँका तक नहीं, मेरे प्रति वह इस क़दर तन्मय हो गई थी।

"रास्ते में उसने अत्यन्त गम्भीर भाव से वेदना-भरे शब्दों में मुझसे उलाहने के रूप में बताया कि मैं कितना बड़ा निर्मोही हूँ—मिलने पर हार्दिक स्नेह जताने के बाद इतनी जल्दी भूल जाना चाहता हूँ कि एक स्टेशन तक भी साथ नहीं देना चाहता, दूसरे की पीड़ा के प्रति इस क़दर उदासीन रहना किसी प्रकार भी उचित नहीं है। स्नेह-प्रेम के लिये लोग बड़े से बड़ा बलिदान कर डालते हैं, और जो व्यक्ति इस क्षेत्र में विचार-कर क़दम बढ़ाते हैं वे कभी महान् पुरुष नहीं हो सकते, इत्यादि, इत्यादि।

"मैं हृद्‌गत भाव से उसकी बातें सुन रहा था। हमारे डिब्बे में हम दो व्यक्तियों के अतिरिक्त तीन व्यक्ति और थे। वे तीनों अंग्रेज थे—सम्भवत: ठेठ यूरोपियन। उनमें एक स्त्री थी, दो पुरुष थे। निश्चय ही वे हम लोगों की बातों का एक अंश भी समझ नहीं पा रहे थे। पर बड़े गौर से हम लोगों की ओर देख रहे थे।

"सम्मोहिनी की बातों से मेरे अंतर के भी अंतर में एक अजीब-सी मथन-क्रिया चलने लगी थी। एक निराला परिवर्तन मुझमें आ रहा था। मुझे ऐसा लगता था कि जैसे मैं किसी के रहस्यमय तन्त्र-मन्त्र के प्रभाव से कुछ का कुछ बनता चला जा रहा हूँ। सम्मोहिनी की जादू-भरी व्याकुल आँखों ने जैसे अपनी चुम्बक-शक्ति के प्रभाव से मेरी सम्पूर्ण आत्मा को कण-कण करके अपने भीतर समेटना शुरू कर दिया था। फल यह हुआ कि जब दूसरा स्टेशन आया, तो गाड़ी से उतरने की बात ही मुझे याद नहीं आई—ऐसी भ्रान्ति मुझमें छा गई। सम्मोहिनी ने भी मुझे उतरने की याद नहीं दिलाई। जब एक टी० टी० आई० ने आकर मुझसे टिकट माँगा,

तो मेरे होश कुछ ठिकाने लगे। पर मेरे घबराकर उठने के पहले ही सम्मोहिनी ने बिना मेरी राय लिये लखनऊ से बम्बई तक के फर्स्टक्लास के किराये का पूरा रुपया उसके हाथ में देते हुए कहा, 'हड़बड़ी के कारण लखनऊ स्टेशन में इनके लिये टिकट नहीं खरीदा जा सका। अब मेहरबानी करके एक टिकट इनके लिये बना दीजिये।' टी० टी० आई० उसी वक्त टिकट-घर में गया और थोड़ी देर में एक टिकट बनवाकर ले आया।

"मैं भ्रान्त अवस्था में अवश भाव से अपनी सीट पर चुपचाप बैठा रहा। मैं कुछ समझ ही नहीं पा रहा था कि यह सब क्या हो रहा है। 'क्या सचमुच भगाया जा रहा हूँ, जिसे अंग्रेजी में कहते हैं—किडनैप्ड किया जाना ?' मैंने अपने मन में प्रश्न किया। मन ने कोई उत्तर न दिया। बीच-बीच में मैं जब भ्रान्ति की स्थिति में कुछ क्षण के लिये होश में आता तो उठकर गाड़ी पर से उतर जाने की चेष्टा मुझमें जागती। पर मेरे तनिक भी हिलते ही सम्मोहिनी सहज भाव से मेरा हाथ पकड़ लेती। उसका जादू-भरा स्पर्श और चुम्बक भरी आँखों की रहस्यमयी चितवन मुझे फिर बैठे रहने को विवश कर देते। कुछ देर बाद गाड़ी उस स्टेशन को छोड़कर भी चल पड़ी। एक बार यह पागलपन की भी इच्छा हुई कि खिड़की के रास्ते चलती गाड़ी से कूद पड़ूँ। पर तत्काल ही वह मनोवेग किसी के सम्मोहन-मन्त्र से अपने आप ठंडा पड़ गया।

"मुझे अपनी प्यारी यूनिवर्सिटी का विछोह माँ की गोद के विछोह से भी अधिक सताने लगा, और अपने साथ के लड़कों के बिछुड़ने की याद से रह-रहकर मेरे मन में टीस-सी उठने लगी। मेरे मन की दशा उस समय ठीक वैसी ही हो रही थी जैसी एक किशोर वय वाली नववधू की होती है, जो पहली बार सुसराल जाने पर एक ओर अपने आजन्म परिचित माता, भाई, बहिन और सखी-सहेलियों के विछोह से विकल होती है, और दूसरी ओर एक अपूर्व परिचित जीवन की विचित्रता के कौतूहल से कंपित रहती है। वास्तव में उस समय की अपनी करुण परिस्थिति मुझे इस समय अत्यन्त हास्यास्पद-सी लगती है, पर उस समय तो मुझे ऐसा

लगता था जैसे मेरे स्थिर, शांत, सुन्दर, सुखद जीवन में एक भयंकर भूकम्प आ गया हो।

"जब मैं कुछ शांत हुआ तो मैंने एक बार बड़े गौर से उस आश्चर्यमयी नारी की ओर देखा जो अपने प्रबल पौरुष से साहसपूर्वक मुझे अपने साथ भगाये लिये जा रही थी। जो आत्मविश्वास से पूर्ण होने के साथ ही स्नेह से अत्यन्त सरस थी। उसने बड़े ही मीठे स्वर से कहा, 'मेरे व्यवहार ने तुम्हें स्पष्ट ही आश्चर्य में डाल दिया है। पर घबराने की कोई बात नहीं है। मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि मेरे साथ जीवन की कोई पार्थिव असुविधा तुम्हें नहीं रहेगी। छात्र-जीवन से अचानक सम्बन्ध टूट जाने से तुम्हें अवश्य दुःख हो रहा होगा, पर तुम्हें यह भी जानना चाहिये कि छात्र-जीवन ही मनुष्य-जीवन की चरम परिणति नहीं है। जिस व्यक्ति को लक्ष्य करके तुमने अपनी कविता में कहा था—अभी विदा दें कैसे रानी? वह स्वयं भी तुमसे बिछुड़ना नहीं चाहती थी। अगर वह अपने साथ तुम्हें भी लिये जा रही है तो इस बात से दुखी होने का कारण तुम्हारे लिये नहीं होना चाहिये। इसलिये पिछले जीवन को एकदम भूलकर नये जीवन का स्वागत करने के लिये प्रसन्न मन से तैयार हो जाओ।'

"यह लेक्चर बघारकर उसने फिर एक बार धीमे से मेरी कलाई पकड़ ली। उस स्पर्श से मेरी रगों में नये सिरे से बिजली दौड़ गई। मैं चुप रहा, केवल भ्रांत दृष्टि से उस अनोखी मर्दानी औरत को देखता हुआ मन ही मन यह प्रश्न करने लगा—क्या वह सचमुच सहृदय है या एक धूर्त स्त्री ने अपने फंदे में मुझे फाँस लिया है? नहीं, वह धूर्त कदापि नहीं हो सकती—अपने प्रश्न का उत्तर स्वयं देते हुए मैं अपने मन में कहने लगा—मेरे साथ धूर्तता करके उसे लाभ ही क्या हो सकता है? वह मनचली भले ही हो, पर धूर्त नहीं हो सकती। उसकी आँखों में सच्ची सहृदयता का भाव झलक रहा है। पर इस तरह की धोखेबाज़ी से वह मुझे अपने साथ क्यों भगाये लिये जाती है? वह मुझसे प्रेम करती है? पर

प्रेम में इस तरह की ज़बर्दस्ती कैसी ? वह जानती है कि मैं भी उसे चाहता हूँ। पर इस हद तक तो मैंने कभी कल्पना भी नहीं की कि उसके साथ भाग निकलूँ। तो भी इससे क्या ? अच्छा, यह सम्भवतः जानती है कि बाद में मैं इस हद तक भी···

"इस तरह की ऊटपटांग प्रश्नावली मेरे मन में चलने लगी। रास्ते भर वह तरह-तरह की बातों से मेरे उखड़े हुए मन को फिर से जमाने की चेष्टा करती रही।

"बम्बई की एक आलीशान इमारत में उसने एक हिस्सा किराये पर ले रखा था। मैं वहीं उसके साथ रहने लगा। उस विशाल नगरी का राग-रंगमय वातावरण देखकर मेरे मन का सारा अवसाद जाता रहा, जिसने लखनऊ से बम्बई तक रेल-यात्रा के अवसर पर मुझे बुरी तरह से धर दबाया था। उस उन्मुक्त क्षेत्र में मेरे भीतर दबे हुए महत्वाकांक्षा के बीज ने जैसे उपयुक्त मिट्टी पा ली और वह किसी जादू की माया से रातोंरात पनप उठा।

"सम्मोहिनी ने अपने प्रभाव से मुझे एक फिल्म-कम्पनी में गीत लेखक की हैसियत से नियुक्त करवा दिया। मुझे काम नहीं के बराबर करना पड़ता था, और तनख़्वाह चोखी मिलती थी। यूनिवर्सिटी की पढ़ाई के अकस्मात् छूटने का सारा क्षोभ मेरे मन से जाता रहा, और मैं भूत के लिये रोना छोड़कर वर्त्तमान में जमने की चेष्टा करता हुआ क्षितिज के उस पार रंगीनी के प्रति बड़े वेग से आकर्षित होने के लक्षण प्रकट करने लगा। पर वर्त्तमान का मध्याकर्षण बड़ा ज़बर्दस्त सिद्ध हुआ, जिसके फल-स्वरूप मैं अपने मन के पंख पसारकर क्षितिज के उस पार तक उड़ चलने में एकदम असमर्थ सिद्ध हुआ।

"आरम्भ में, जब लखनऊ में सम्मोहिनी से मेरा परिचय पहले पहल हुआ था तब से लेकर बम्बई पहुँचने के कुछ समय बाद तक—उसके प्रति मेरे मन का भाव बहुत ही धूमिल, अस्पष्ट और छायात्मक रहा। पर

बम्बई आने पर जब मेरी एक निश्चित आर्थिक स्थिति बन गई और मेरे महत्वाकांक्षापूर्ण भावी जीवन की रूप-रेखा भी कल्पना के सुनहरे रंगों से रंगीन होकर मेरी आँखों के आगे झलमलाने लगी, तो मैं कुछ दूसरी ही दृष्टि से सम्मोहिनी को देखने लगा। लाख चेष्टा करने पर भी अपने भावी जीवन का कोई भी चित्र मेरे मन की आँखों के आगे ऐसा नहीं खिंच पाता था जिसमें सम्मोहिनी एक निश्चित स्थान पर अधिकार न किये बैठी हो। पहले तो मेरे ज्ञात मन की समझ ही में यह बात न आई कि सम्मोहिनी का छाया-चित्र क्यों मेरे प्रत्येक रंगीन कल्पनामय चित्र को ढक देता है। बाद में सारी बात एक दूसरे ही रूप में मेरे सामने आई। मेरा जो अनुभवहीन नवयुवक हृदय आज तक किसी रमणी के प्रति केवल दूर ही से श्रद्धा की भावना व्यक्त करके पूर्ण संतुष्ट था, वह अत्यधिक निकटता में आने के कारण जैसे किसी रासायनिक प्रतिक्रिया से प्रेम-सुधा-पीड़ित और स्पर्श-सुख-लालसी हो उठा।

"सम्मोहिनी ने अपनी ढिठाई से मेरे भीतर एक अनोखी रगड़ पैदा कर दी थी, जिससे उत्पन्न चिनगारी ने मेरे हृदय में एक अच्छी-खासी आग सुलगा दी थी।

"कुछ समय तक वह उस आग को और अधिक तीव्रता से सुलगाती रही। मेरे साथ उसका व्यवहार पहले से अधिक सहृदयतापूर्ण, अधिक स्नेहमय और अधिक रंगमय होता चला गया, जिसका अर्थ अब मैं बिल्कुल ही नये रूप से और नये ही ढंग से लगाने लगा।

"उसके पास प्रतिदिन तरह-तरह के लोग आते थे, और प्रशंसकों के साथ मोटरों में सवार होकर वह सैर के लिये या किसी 'ज़रूरी काम' के लिये प्रायः प्रतिदिन शाम को बाहर निकला करती थी। पर दिन में एक न एक समय वह दो-ढाई घंटे के लिये मेरा साथ अवश्य देती थी—या तो घर में बैठकर तरह-तरह के सुखद विषयों पर आकर्षक ढंग से बातें किया करती थी, या विक्टोरिया गार्डेन्ज या मलाबार हिल के किसी एकांत स्थान में या समुद्र के किसी अपेक्षाकृत निर्जन तट पर मुझे अपने

साथ ले जाकर जगत् के किस्सों की बड़ी आलोचना करके जीवन की वास्तविकता की ओर मेरा ध्यान खींचने की चेष्टा करती रहती। इस कारण उसके किसी भी प्रशंसक के प्रति मेरे मन में ईर्ष्या की भावना का लेश भी नहीं जागा। इस सम्बन्ध में मेरा मन यह सोचकर तसल्ली पा लेता कि प्रशंसकों के निकट संसर्ग में आये बिना कोई भी अभिनेत्री ख्याति प्राप्त नहीं कर सकती, और ख्याति पाये बिना एक अभिनेत्री का जीवन कोई मानी नहीं रखता। बल्कि मुझे इस बात से प्रसन्नता होती थी कि उसके इतने अधिक प्रशंसक हैं, क्योंकि इससे मेरे अहम भाव की तुष्टि होती थी। मैं सोचता था कि इतने अधिक प्रशंसकों के रहते हुए भी उसने मुझी को अपना निकटतम साथी चुना है, और केवल मुझे अपने साथ भगा लाने योग्य समझा है।

"पर एक दिन एक अनोखी परिस्थिति ने मेरी आँखें खोल दीं।

"फिल्मिस्तान में मुझे एक-दो साथी ऐसे मिल गये थे जो भंग छानने के बड़े प्रेमी थे। उनकी सोहबत में मैंने भी धीरे-धीरे यह आदत डाल ली। साथी तो मुझे हालावादी भी काफ़ी मिले थे, पर किसी अज्ञात संस्कार-वश शराबखोरी के चक्कर में पड़ने का साहस मुझे नहीं हुआ। भंग को 'शिव जी की बूटी' मानकर इस घोर मूर्खतापूर्ण 'पौराणिक विश्वास' से अपने आपको ठगता हुआ मैं उसकी तरंग में बहने का आदी हो गया। आरम्भ में मुझे इसका नशा कुछ अजीब, बेतुका और बेलज्जत मालूम हुआ और उससे मेरी तबीयत ख़राब होने के सिवा न तो किसी प्रकार की शारीरिक पुलक का अनुभव कभी हुआ, न किसी प्रकार के मानसिक उल्लास का। पर बाद में धीरे-धीरे मुझे भंग छानने के बाद मानसिक अवसाद के क्षणों में यह अनुभव होने लगा कि कुछ रहस्यमय संगीत स्वर विविध रंगमय रूप धारण करके मेरे चारों ओर चक्कर लगा रहे हैं। संगीत के प्रति विशेष झुकाव होने के कारण मैं उन रहस्यमयी छाया-छवियों में ख़ास तौर से दिलचस्पी लेने लगा और उनमें निराले प्रकार का आनंद मुझे प्राप्त होने लगा। तब से भंग का मज़ा मुझे मिलने लगा, और मैं नशे की हालत

में, अपने ख़याली क्षणों में उन छाया-छवियों को जीवित रूप में प्राप्त करने के लिये अत्यन्त उत्सुक हो उठा। एक ओर भंग की तरंग में मैं बहा जा रहा था, दूसरी ओर सम्मोहिनी का प्रेमाकर्षण बड़ी तेज़ी से मुझे अपनी ओर खींच रहा था। इन दोनों की खींचातानी के कारण मेरी मानसिक दशा असाधारण रूप से अस्वस्थ हो उठी। मैंने इन दोनों द्वन्दों को एक रूप में मिलाने की पूरी चेष्टा की और काल्पनिक छाया-छवियों की प्राण-प्रतिष्ठा जीवित प्रेम-प्रतिमा में करनी चाही। आप स्वभावतः यह सोचते होंगे कि मैं एक सीधी-सी बात को बेकार इस तरह घुमा-फिराकर कहना चाहता हूँ। पर असल में मेरी मानसिक उलझनें कुछ ऐसी अनोखी रही हैं कि बिना मनोवैज्ञानिक व्याख्या के मेरे जीवन की किसी भी घटना का सच्चा स्वरूप आपको नहीं मिल सकता। ख़ैर।

"एक दिन मैंने भंग की मात्रा कुछ अधिक ली थी। उस दिन सम्मोहिनी सुबह ही ग़ायब थी। उसने सुबह ही मुझे बतला दिया था कि आज वह तमाम दिन बहुत व्यस्त रहेगी। दो-तीन जगह उसे निमंत्रण था और बाकी दो-तीन जगह उसे स्वयं जाकर कुछ व्यक्तियों से मिलना था। निमंत्रण देनेवाले व्यक्ति कौन थे, और किन व्यक्तियों से उसे स्वयं जाकर मिलना था, इस सम्बन्ध में न उसने कुछ बताया और न मेरे मन में ही जानने की कोई उत्सुकता थी। जितने समय वह मेरे निकट रहती थी उतने ही समय के लिये वह मेरे लिये सत्य थी—परिपूर्ण, जीवित सत्य, और जितने समय वह मुझसे अलग रहती थी उतने समय के लिये वह मेरे लिये एक छायामात्र थी—एक अतीन्द्रिय, स्पर्शातीत छाया जिसकी न तो किसी भी पुरुष के संसर्ग से कलुषित होने की संभावना मैं समझता था, न जिसके संबंध में यह विश्वास मुझे होता था कि वह—छाया—कभी किसी सशरीरी पुरुषकी पकड़ में आ सकेगी। इसलिये उसकी अनुपस्थिति में ईर्ष्या का भाव किसी भी रूप में मेरे आगे नहीं फटकता था।

"मैं कह चुका हूँ कि उस दिन मैंने भंग कुछ अधिक मात्रा में ली थी। जब मेरे मस्तिष्क में उसके नशे का रंग चढ़ने लगा तो अनुपस्थित सम्मोहिनी

की वही अतीन्द्रिय छाया मिनट-मिनट भर में अपना रूप बदलकर विचित्र-विचित्र रंगों से रंजित होकर, मेरे मन की रागमयी आँखों के आगे अद्‍भुत लीला-लास्य से विहरने लगी। दिन भर में अपने कमरे में अकेले बैठा हुआ उसी भ्रामरी मानसिक अवस्था में झूमता रहा, और उस पल-पल में वेश बदलने वाली छाया को अपने जीवित प्राणों के बन्धन से बाँधकर उसे सजीव रूप में पकड़ पाने की उन्मादकारी लालसा से पीड़ित रहा। उस दिन जीवन में पहली बार मेरे मन की अतीन्द्रिय अनुभूतियाँ मेरे शरीर के रक्तकणों—बल्कि रक्त के परमाणुओं—के भीतर प्रवेश करके मेरे हाड़-मांस के शरीर की चमड़ियों में प्रवाहित होने लगी।

"इस प्रकार की अनुभूति का फल यह हुआ कि जब रात में प्रायः साढ़े दस बजे के क़रीब सम्मोहिनी घर वापस आई तो मेरा उन्माद चरम-सीमा को पहुँच गया।

"पता नहीं क्यों, उसका चेहरा उस समय बहुत मुरझाया हुआ था, इस हद तक कि मेरी उस नशे की हालत में भी उसके मुख का वह चकित और म्लान भाव मुझसे छिपा न रहा। पर इस बात से मेरा नशा ठंडा पड़ने के बजाय और अधिक भड़क उठा।

"उसने मेरे निकट आकर मरे मन से पूछा, 'दिन भर क्या घर पर ही बैठे थे ? कहीं टहलने नहीं गये ?'

"नहीं, कुछ सुस्ती-सी मालूम हुई और मैं यहीं बैठा रह गया।' 'खाना खा लिया ?' उसी उदासीनता से अत्यन्त रूखे स्वर में उसने पूछा। आज उसकी वह उदासीनता आश्चर्यजनक थी। यदि मेरी मानसिक स्थिति उस समय साधारण स्तर पर होती तो उसकी वह रुखाई मुझे काट खाती। पर आज तो मेरे मन की दशा ही कुछ विचित्र थी।

"मैंने कहा, 'हाँ, कुछ खा लिया है।' और कहता हुआ मैं अपनी लालसा-भरी दृष्टि को एक अजीब ढंग से उसके मुख पर गड़ाये रहा। निश्चय ही मेरे उस समय की दृष्टि में एक निराला उन्माद झलक रहा होगा, और संभवतः इसी कारण सम्मोहिनी के मख पर घबराहट की एक

हल्की-सी छाया घिर आई। पर उसने तत्काल सँभलकर अपनी आवाज़ में स्वाभाविकता लाने की चेष्टा करते हुए कहा, 'अच्छा तो अब पलंग पर लेट जाओ, और आराम करो। मैं भी दिन भर के चक्करों के बाद बहुत थकी हुई हूँ, लेट जाना चाहती हूँ।' यह कहकर वह जाने लगी। मुझे सहसा न जाने क्या दुष्प्रेरणा हुई, मैंने तत्काल उसे टोकते हुए कहा, 'ज़रा ठहरना ! मुझे एक ज़रूरी बात करनी है।'

"सम्मोहिनी ठिठककर खड़ी हो गई, और अत्यन्त आश्चर्य और साथ ही घबराहट के साथ मेरी ओर देखती हुई बोली, 'क्यों क्या बात है ?'

"मैंने कहा, 'ज़रा बैठो, तब······'

"वह अपनी तीव्र दृष्टि से मेरे मन का वास्तविक भाव जानने की चेष्टा करती हुई, पास ही एक कुर्सी पर बठ गई। और तब बोली, 'लो, अब कहो, तुम्हें क्या कहना है ?'

"मैंने कहा, 'सम्मोहिनी, आज मेरा जी कुछ अच्छा नहीं है, इसलिये आज सोने की जल्दी न करो, बल्कि मेरे पास बैठी रहो। तुम्हारा पास बैठना मुझे अच्छा लगता है।'

"अच्छी बात है, मैं बैठी हूँ। अब तो निश्चय ही तुम्हारा जी बहुत कुछ हल्का हो गया होगा ? या अब भी कुछ बैचैनी बाकी है ?'

"उसके बोलने का ढंग आज कुछ ऐसा अनोखापन लिये हुए था कि भंग के नशे की उस हालत में भी मेरा उत्साह बहुत कुछ ठंडा पड़ गया, और साहस क्षीण हो गया। प्रायः एक मिनट तक कमरे में सन्नाटा छाया रहा। बाहर से मोटरों की पों-पों और 'विक्टोरिया' के घोड़ों के टापों की आवाज़ मेरे भंग के नशे से आच्छन्न कानों में तोपों और बम के गोलों के स्फोट के रूप में आ रही थी। पर उस ओर से ध्यान हटाकर अपने पूर्व निर्धारित एकमात्र लक्ष्य के लिये मैं अपने मन को केन्द्रित करने और बिखरी हुई शक्ति को बटोरने लगा।

"कुछ खाँसकर गला साफ करते हुए मैंने कहा, 'सम्मोहिनी, अब हम दोनों के बीच स्थायी संबंध स्थापित होने में देर किस बात की है ?'

"अत्यन्त भ्रान्त भाव से मेरी ओर देखते हुए सम्मोहिनी ने कुछ तीखी आवाज़ में पूछा, 'कैसा स्थायी संबंध ?'

"मैंने लड़खड़ाती हुई ज़बान से कहा, 'यही कि···मेरा मतलब यह है कि ··क्या तुम मेरा मतलब समझीं नहीं ?'

"नहीं ! कतई नहीं !' उसने दृढ़ता के साथ कहा। मैंने कहा, 'मेरा मतलब···मैं जान गया हूँ कि तुम मुझे कितना चाहती हो। मैं प्रेम के विषय में बड़ा मूर्ख रहा हूँ सम्मोहिनी ! यह बात विश्वास योग्य न होने पर भी मैं तुमसे सच कहता हूँ। इतने दिनों तक मैं ठीक से समझ न पाया कि तुम मुझे अपने साथ भगाकर यहाँ क्यों ले आईं। पर अब मैं उस बात के महत्व को भली भाँति समझ गया हूँ। मेरा यह समझना तब सम्भव हुआ है जब तुम्हारे प्रति स्वयं मेरी भावना में उथल-पुथल मचने लगी है। प्रेम की तन्मयता क्या चीज है यह बात आज मेरी समझ में स्पष्ट आ रही है और इसके लिये मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूँ, क्योंकि तुम्हीं ने मुझे जीवन को और यौवन को नये दृष्टिकोण से देखने का सबक सिखाया है। पर क्या अब इस बात के लिये समय नहीं आ गया है कि हम दोनों के पारस्परिक प्रेम को सामाजिक रूप दिया जाय ?'

"सम्मोहिनी के मुख के भाव से स्पष्ट पता चलता था कि वह मेरी बात सुनकर कल्पनातीत रूप से भयभीत हो उठी है। भीत भाव से उसने पूछा, 'कैसा सामाजिक रूप ?'

"उसकी घबराहट से तनिक भी विचलित न होकर मैंने कहा, 'तुम क्या समझी नहीं ! मेरा मतलब विवाह से है।'

"सम्मोहिनी तमतमाती हुई उठ खड़ी हुई और फनफनाती हुई बोली, 'मैं तुम्हें धूर्त तो नहीं कहूँगी, पर तुम मूर्ख, वज्र मूर्ख हो।'

"अब आश्चर्य और घबराहट की बारी मेरी थी। मैं भी उठ खड़ा हुआ और भ्रांत भाव से बोला, 'क्या कोई अनुचित बात मेरे मुँह से निकल गई है ?'

"उसने उसी रौब के साथ कहा, 'तुमने केवल अनुचित ही नहीं बल्कि

अनर्थ-भरी बात कही है। विवाह ! तुम्हें आज तक मालूम हो जाना चाहिये था कि पहले ही दिन से मैं तुम्हें उस दृष्टि से देखती आई हूँ जिस दृष्टि से एक सयानी स्त्री एक छोटे बच्चे को देखती है। तुम इतने बड़े मूर्ख हो कि इस सीधी-सी बात को समझ न पाये, और अपने प्रति मेरे स्नेह-भाव का कुछ दूसरा ही अर्थ लगाकर विवाह का प्रस्ताव करने चले हो। मेरे इतने दिनों के व्यवहार में तुमने कौन-सी ऐसी बात पाई जिससे तुम्हारे मन में इस तरह की बेतुकी और बेहूदा सूझ पैदा हो गई ?'

"मेरा सारा नशा काफूर हो गया था। मैं दरअसल वज्रमूर्ख की तरह उसकी ओर आँखें फाड़-फाड़कर देखता रह गया। इतने दिनों तक मैं उसके मुख की जिस आकृति से परिचित था, वह इस समय मुझे एकदम बदली हुई मालूम हुई। प्राय: ४५ वर्ष की अधेड़ स्त्री का-सा गाम्भीर्य उसके मुख पर छा गया था। उसके नवयौवनोचित स्वभाव के जिस सहज चंचल उल्लास से मैं इतने दिनों प्रभावित था वह पल में न जाने कहाँ गायब हो गया था। मैं मन ही मन कहने लगा, 'तब क्या सचमुच सम्मोहिनी को ठीक तरह से समझने में मुझसे इतनी बड़ी भूल हो गई। इतना बड़ा अंधा निकला मैं। मेरे अन्तःकरण ने मुझे ऐसा भयंकर धोखा दिया। क्या यह संभव है ?'

"कुछ भी हो, प्रकट रूप में मैंने कहा, 'मैं अपने मूर्खतापूर्ण प्रस्ताव के लिये बहुत अधिक लज्जित हूँ और हृदय से उसके लिये क्षमा चाहता हूँ। आज तुमने मेरी आँखें फिर नये सिरे से खोल दीं। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि फिर कभी इस प्रकार की भद्दी भूल मुझसे न होगी।" यह कहकर मैं अपने कमरे में चला गया, और वहाँ पलंग पर चारों खाने चित्त लेट गया।

"तब से सम्मोहिनी के और मेरे बीच बड़ा भारी व्यावहारिक अंतर आ गया। मैं उसी के साथ रहने लगा, पर बिल्कुल दूसरी ही भावनाओं को लेकर। उस दिन से मेरी प्रकृति में एक निश्चित परिवर्तन आ गया और मेरी मानसिक दृष्टि में पहले से बहुत अधिक स्पष्टता आ गई।

फिल्मों के लिये कहानियाँ और गीत लिखने का क्रम मैंने जारी रखा। इसी सिलसिले में कुछ नयी फिल्म अभिनेत्रियों से मेरा घनिष्ठ परिचय हो गया, पर मैं प्रत्येक के साथ अपने व्यवहार में बड़ा सतर्क रहने लगा, और किसी के भी साथ किसी भी प्रकार का घनिष्ठ संबंध स्थापित करने की चेष्टा मैंने नहीं की।

"सम्मोहिनी ने मेरे प्रति विशेष उदासीनता का-सा रुख अख्तियार कर लिया था, और एक ही मकान में रहते हुए भी हम दोनों एक दूसरे से एकदम अपरिचित, विजातीय प्राणियों की तरह रहने लगे थे। उस विशेष घटना के कुछ समय बाद से एक नये व्यक्ति ने हमारे मकान में आने-जाने का क्रम बना लिया। एक दिन सम्मोहिनी ने न जाने क्या सोचकर उससे मेरा परिचय कराया। मुझे मालूम हुआ कि उसका नाम गोपीनाथ शर्मा है और वह भी मेरी ही तरह फिल्मों के लिये कहानियाँ, डायलॉग, गति आदि लिखा करता है और इस क्षेत्र में काफी प्रसिद्धि पा चुका है। उसके नाम से और काम से मैं परिचित था, पर व्यक्तिगत रूप से उससे मेरा परिचय नहीं था। वह क़द में कुछ ठिगना था, पर देखने में काफ़ी सुंदर लगता था। पहले ही दिन से मैं इस बात पर गौर कर रहा था कि सम्मोहिनी उसके साथ ठीक उसी रूप में पेश आ रही थी जिस रूप में वह पहले पहल, लखनऊ में, मेरे साथ पेश आई। वही मधुर मुसकान, वही चंचल कटाक्ष, वही स्निग्ध सरसता, वही यौवनोचित उल्लास से भरी जी को लुभाने वाली बातों की फुलझड़ियाँ। गोपीनाथ को उसकी एक-एक बात, एक-एक मुद्रा अत्यंत मार्मिक रूप से प्रभावित करती थी, यह मैं स्पष्ट देख रहा था। प्रायः प्रतिदिन नियमित रूप से गोपीनाथ उससे मिलने आता और उसे अपने साथ ले जाता—कहाँ ले जाता, इस बात की कोई भी जानकारी मुझे न रहती।

"गोपीनाथ के साथ सम्मोहिनी की घनिष्ठता देखकर मेरे मन में धीरे-धीरे एक ऐसी भावना घर करने लगी जिसे किसी भी हालत में प्रियकर नहीं कहा जा सकता। मैं उस भावना को दबाने की लाख चेष्टा करता,

पर वह समस्त अवरोधों को तोड़-फोड़कर ऊपर उठ आती और मेरे मस्तिष्क की नसों में एक भयंकर ऐंठन उत्पन्न कर देती। ईर्ष्या का वह भूत विशेष-कर ऐसे क्षणों में तंग करता जब वह मुझे मकान में अकेला पाता। मेरे मन में यह ध्रुव विश्वास जम गया कि गोपीनाथ के साथ सम्मोहिनी का प्रेम संबंध स्थापित हो चुका है और अब शीघ्र ही दोनों विवाह-बंधन में बंधने की तैयारियाँ कर रहे हैं। ईर्ष्या के साथ ही गोपीनाथ के प्रति मेरे मन में एक प्रकार के आदर का भाव भी उत्पन्न होने लगा, विशेष-कर यह सोचकर कि वह सम्मोहिनी की तुलना में मेरी तरह 'बच्चा' नहीं है। उसकी उम्र २६--२७ साल के करीब होगी—और जीवन और जगत् के विषय में मुझसे अधिक अनुभवी है—कम से कम मेरी धारणा उसके संबंध में ऐसी ही थी, फिर भी रह-रहकर समय-असमय वह भावना मुझे असहनीय पीड़ा पहुँचाती रहती थी कि सम्मोहिनी ने मेरे छल-रहित, सांसारिक अनुभव से हीन, भावुक हृदय के भोलेपन का पूरा लाभ उठाकर, मुझे अपने साथ लगाकर अच्छा बेवकूफ़ बनाया और अंत में दूध की मक्खी की तरह अलग फेंक दिया। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह थी कि वह सब होने पर भी उसके प्रति मेरे हृदय का प्रेम-भाव घटने के बजाय और अधिक तीव्र हो उठा। बल्कि सच पूछा जाय तो सच्चे प्रेम की मार्मिक अनुभूति से मेरा वास्तविक परिचय पहली बार तब हुआ जब सम्मोहिनी ने प्रेम-प्रस्ताव को ठुकरा दिया। जब मैंने उससे विवाह का प्रस्ताव किया था तब मेरे भीतर एक ऐसी रोमांटिक प्रवृत्ति काम कर रही थी जो काल्पनिकता-रंग से रंगी न थी, पर जब सम्मोहिनी ने उस प्रस्ताव के लिये मेरा तिरस्कार किया, तो धीरे-धीरे मेरे भीतर जो प्रेमानुभूति जागी वह मेरे हृदय के रक्त से रंगीन होती चली गई। उस घटना ने मेरे किशोर हृदय की काल्पनिकता के समस्त रंगीन जालों को छिन्न-भिन्न करके मुझे सहसा जीवन की वास्तविक अनुभूति के केन्द्र में लाकर खड़ा कर दिया था। और उसके बाद जब गोपीनाथ से सम्मोहिनी की घनिष्ठता का दिन पर दिन बढ़ता हुआ रूप मैंने देखा तो

वास्तविकता की वह अनुभूति सहस्रों तीखे काँटों से मेरे सारे अंतरतम को स्पर्श करने लगी।

"प्रारंभ में प्राय: दो महीने तक गोपीनाथ के चेहरे पर मुझे एक निराले उल्लसित भाव की दीप्ति बराबर चमकती हुई दिखाई देती रही। उस अभिनव दमक से उसके मुख का सौंदर्य कई गुना अधिक खिला हुआ मालूम होता था। पर दो महीने बाद मैंने इस बात पर ग़ौर किया कि उसके चेहरे की वह दमक दिन पर दिन फीकी पड़ती जाती है। बाद में ऐसी तीव्र गति से उसके मुख के मुरझाने का क्रम चला कि मैं हैरानी में पड़ गया, और कारण कुछ समझ ही न पाया। मुझे उसके साथ विशेष घनिष्ठता न होने से वह अपने मन की बात मुझसे नहीं बताता था, और सम्मोहिनी से इस सम्बन्ध में कुछ जानने की आशा मैं कर ही नहीं सकता था। मैं प्रतिदिन सम्मोहिनी के मुख के भाव से इस नवीन रहस्य का कुछ पता लगाने की चेष्टा करने लगा, पर इस चेष्टा में मुझे पूर्णरूप से असफलता मिली। सम्मोहिनी के मुख पर किसी भी प्रकार के परिवर्तन का लेश भी मुझे नहीं दिखाई दिया। वह गोपीनाथ के साथ मेरे सामने, चाय पीते समय या भोजन के अवसर पर या आराम के क्षणों में अब भी पहले की ही तरह मीठी मुसकान, चंचल कटाक्ष और उल्लसित किलकारियों के साथ रंग-रस की बातें करती थी। पर गोपीनाथ से उस किलकारी की प्रतिध्वनि किसी भी रूप में वह नहीं पाती थी। कभी-कभी मरे मन से वह भले ही उसकी किसी मनमौजी बात पर या चुटकुले पर थोड़ा मुसकरा देता हो, पर ऐसे क्षणों में मुझसे यह बात छिपी न रहती कि वह क्षीण मुसकान रोने का ही बदला हुआ रूप है।

"धीरे-धीरे सम्मोहिनी के पास गोपीनाथ का आना-जाना कम होता चला गया और कुछ समय बाद तो उसने एकदम ही आना बंद कर दिया। मैंने सोचा था कि इस बात से सम्मोहिनी के हृदय को काफ़ी चोट पहुँचेगी। पर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब मैंने देखा कि गोपीनाथ का संग छूट जाने के बाद वह पहले से अधिक स्वस्थ, सुंदर और

प्रसन्न जान पड़ती थी ।

"इसके बाद एक दिन कुछ स्थानीय पत्रों में यह संवाद छपा कि गोपीनाथ शर्मा नामक फिल्म-जगत् के एक कथाकार ने पिस्तौल से आत्म-हत्या कर ली है । उसी संवाद के साथ यह भी छपा कि अपनी मनोनीत प्रेमिका से किसी कारण विवाह न हो सकने के कारण उसने आत्महत्या की है । वह संवाद पढ़कर मैं मर्माहत और आतंकित हो उठा । गोपीनाथ के साथ सम्मोहिनी के संबंध की जो कल्पना इतने दिनों तक मैंने कर रखी थी वह इस कदर भ्रमपूर्ण सिद्ध होगी, यह मैंने नहीं सोचा था । मैंने यह जानना चाहा कि इस संवाद से सम्मोहिनी के मन में क्या प्रतिक्रिया हुई है । मैं अख़बार लेकर सीधे उसके कमरे में पहुँचा । वह बाहर निकलने की तैयारी कर रही थी और शृंगार-प्रसाधनों से सज्जित हो चुकी थी । मैंने उसे वह समाचार पढ़ने को दिया। पढ़ते ही उसका मुख अत्यंत गंभीर हो आया । प्रायः पाँच मिनट तक अख़बार हाथ में लिये खड़ी रही । ऐसा उसकी शून्य दृष्टि उसी विशेष संवाद की ओर केंद्रित हो गई, जान पड़ता था जैसे वह संवाद का ठीक-ठीक अर्थ समझ ही न पाती हो । उसके बाद उसकी आँखों से टपाटप आँसू गिरने लगे, और वह धम्म से कोच पर बैठ गई । अख़बार को नीचे फेंककर उसने दोनों हाथों से अपनी आँखें ढक लीं, प्रायः दस मिनट तक वह उसी अवस्था में बैठी रही । उसके बाद अकस्मात् उठ खड़ी हुई और सीधे अपने सोने के कमरे में चली गई । स्थिति की गंभीरता देखकर मैं भी चुपचाप वापस चला गया ।

"प्रायः एक हफ़्ते बाद जब वह कुछ स्थिर हुई तो एक दिन शाम को चाय-पान के अवसर पर मैंने साहसपूर्वक गोपीनाथ की दुखद मृत्यु की चर्चा चलाई । सम्मोहिनी ने शांत भाव से कहा, 'मुझे पता नहीं था कि मेरे सौहार्द्र, का वह ऐसा गलत अर्थ लगावेंगे । मैं उन्हें अपने बड़े भाई की तरह मानती थी और उनसे अच्छा स्नेह रखती थी । पता नहीं, विवाह की बेतुकी कल्पना उनके मन में कैसे उत्पन्न हो गई । एक दिन मैंने जब साफ़ इनकार कर दिया, और अंत में······।'

"मैंने मन ही मन उसे इस बात के लिये धन्यवाद दिया कि उसने इस सिलसिले में मेरा दृष्टांत पेश न किया, वर्ना मेरे भीतर के नासूर के स्थान पर बड़ी मार्मिक चोट पहुँचती। उस शोकजनक घटना के बाद दिन बीतते चले गये—दिन पर दिन बीते, मास पर मास और साल पर साल। सम्मोहिनी जिस फिल्म-कंपनी में पहले काम करती थी, उससे अलग हो चुकी थी, और उसने अपनी एक अलग कंपनी 'मोहन मूवीटोन लिमिटेड' के नाम से खड़ी कर ली थी। मैं भी उससे अलग होकर एक दूसरे किराये के मकान में जाकर रहने लगा था, और ठेके के आधार पर विभिन्न कंपनियों में काम किया करता था। सम्मोहिनी के यहाँ मैं मुद्दत से नहीं गया था। उसे मेरी कोई कहानी कभी पसंद न आई। इसलिये न उसने मुझे कभी अपने यहाँ काम के लिये बुलाया, न मैं ही कभी अपने आप उसके पास गया। पाँच-छः महीने में एक बार फिल्मी दुनिया की कुछ विशेष पार्टियों में उससे ऊपरी तौर से भेंट हो जाया करती थी। ऐसे अवसरों पर उससे जो मेरी बातें होती थीं वे साधारण शिष्टाचार तक सीमित रहती थीं, उसके भीतरी जीवन के किसी भी बात का कुछ भी आभास मुझे नहीं मिल पाता था—हालाँकि मैं मन ही मन उसके विषय में कुछ जानने के लिये बहुत उत्सुक रहा करता था। फिल्मी दुनिया में सम्मोहिनी की शोहरत दिन पर दिन अधिक से अधिक फैलती चली जाती थो, जिससे मेरा मन, न जाने क्यों, गर्व और प्रसन्नता से फूल उठता था। पर अपने इस गुप्त गर्व और प्रसन्नता की बात मैंने कभी घनिष्ट मित्र के आगे भी प्रकट नहीं की।

"एक दिन अख़बारों से मुझे मालूम हुआ कि सम्मोहिनी को लेकर एक नयी दुर्घटना घट गई है। ख़बर इस आशय की छपी थी कि सम्मोहिनी जब किसी एक ऐक्टर के साथ अपने स्टूडियो में अभिनय कर रही थी तो पीछे से किसी एक 'आततायी' व्यक्ति ने उस अभिनेता पर पिस्तौल से गोली चला दी, जिससे तत्काल उसकी मृत्यु हो गई। बाद में पुलिस की जाँच से मालूम हुआ कि जिस व्यक्ति ने उस अभिनेता की हत्या की

थी वह सम्मोहिनी को चाहता था और उसने उससे विवाह का प्रस्ताव किया था, पर सम्मोहिनी ने उस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया था। साथ ही यह भी मालूम हुआ कि जिस अभिनेता की हत्या उस आततायी ने की थी उसके सम्बन्ध में उसे संदेह था कि सम्मोहिनी उसे चाहती है।

"इस हत्या का मामला जब अदालत में चला तो सम्मोहिनी ने अपने बयान में कहा कि हत्याकारी से उसकी मित्रता अवश्य थी, पर उसके साथ कभी किसी प्रकार का 'प्रेम-सम्बन्ध' उसका नहीं रहा, और वह बराबर उसे अपने भाई के समान मानती आई थी।

"अन्त में हत्याकारी को फाँसी की सज़ा हुई, और सम्मोहिनी की फिल्म-कम्पनी बदस्तूर चलती रही, बल्कि पहले से अधिक सफलता के साथ चलने लगी। उस हत्याकांड के बाद सम्मोहिनी की शोहरत में और चार चाँद लग गये।

"समय बीतता चला गया, धीरे-धीरे उस हत्याकांड की बात लोग बहुत-कुछ भूल गये। किसी दैवी चक्र से सम्मोहिनी की फ़िल्म कम्पनी असफलता की अंधेरी सीढ़ियों से होकर नीचे की ओर लुढ़कने लगी। अन्त में यहाँ तक नौबत पहुँची कि 'मोहन मूवीटोन कम्पनी' का खातमा हो गया और उसके साथ स्वयं सम्मोहिनी भी फ़िल्मी दुनिया से एक प्रकार से ग़ायब हो गई। सब समय की खूबी है, और खासकर फ़िल्मिस्तान में तो 'सितारों' का इस तरह का उत्थान-पतन एक साधारण-सी बात है। पर मैं सम्मोहिनी को नहीं भूला। एक दिन के लिये भी नहीं, यद्यपि प्रायः दो वर्ष से मैंने उसकी सूरत तक नहीं देखी थी।

"एक दिन अकस्मात मुझे एक मित्र से, जिसका संबंध अख़बारी दुनिया से था, मालूम हुआ कि सम्मोहिनी ने विवाह कर लिया है। पहले तो यह खबर मुझे एकदम अप्रत्याशित और अविश्वसनीय-सी लगी, पर बाद में जब तमाम अखबारों में वह छप गई, तो अविश्वास करने का कोई कारण मुझे नहीं दिखाई दिया। जिससे उसका विवाह हुआ उसका केवल नाम सुना था, उससे मैं अपरिचित था। इस समाचार से मेरे मन के

भीतर एक अव्यक्त अभिमान-भरी मीठी टीस उठकर रह गई ।

"इसके बाद प्रायः डेढ़ वर्ष का अर्सा और बीत गया । इस बीच दुनिया इस बात को बिल्कुल भूल-सी गई थी कि सम्मोहिनी नाम की एक्ट्रेस कभी फ़िल्म-जगत् में चमकती रही है । उसका अस्तित्व ही जैसे विलुप्त हो गया था । कोई भी सिनेमा-संबंधी पत्र उसकी भूतकालीन कीर्ति की चर्चा किसी भी बहाने, भूलकर भी नहीं करता था । विवाह होने के बाद से उसके सम्बन्ध में कोई भी संवाद व्यक्तिगत रूप से भी मुझे कहीं से नहीं मिला, पर मेरी स्मृति के ऊपर ज्ञान में, अज्ञान में, उसकी छाया सब समय मँडराती-सी रहती थी ।

"डेढ़ वर्ष बाद एक दिन उसी अख़बारी दुनिया के मित्र से, जिसने मुझे सम्मोहिनी के विवाह का संवाद सुनाया था, मुझे मालूम हुआ कि सम्मोहिनी बम्बई में है किन्तु मरणासन्न अवस्था में पड़ी हुई है । इस समाचार से मैं इस क़दर विचलित हो उठा जिसका वर्णन मैं नहीं कर सकता । मुझे स्वयं अपने इस उद्वेग पर आश्चर्य हो रहा था । मान-अभिमान की सब बातें भूलकर मैं उससे मिलने के लिये बहुत बेचैन हो उठा । मैंने अपने अख़बारी मित्र से उसका ठिकाना पूछा, पर उसने बताया कि वह स्वयं उसका ठिकाना जानने के लिये उत्सुक है, क्योंकि उसने वह उड़ती हुई ख़बर किसी अनिश्चित ज़रिये से सुनी थी, और वह अपनी आँखों से सही-सही बातें मालूम करके अख़बारों में उसकी रिपोर्ट छपवाना चाहता था । मैंने उससे प्रायः गिड़गिड़ाते हुए प्रार्थना की कि वह दौड़-धूप करके जल्दी से जल्दी सम्मोहिनी का ठीक-ठीक पता मालूम करके मुझे बताने की कृपा करें ।

"मैं प्रतिदिन अत्यन्त उत्सुकता और आशंका के साथ अपने मित्र की प्रतीक्षा करता रहता था, इस आशा से कि वह सम्मोहिनी के सम्बन्ध में कोई निश्चित समाचार मालूम करके आवेगा । प्रातः एक सप्ताह बाद एक दिन उसने मेरे पास आकर कहा, 'सम्मोहिनी के बीमार होने की ख़बर सच है, बीमारी दरअसल चिन्ताजनक है, इससे भी बढ़कर दुःख की

बात यह है कि उसका पति ऐन मौक़े पर उसे त्यागकर कहीं भागकर चला गया है। इसकी भी इतनी चिन्ता नहीं थी, पर सबसे बड़े दुर्भाग्य की बात यह है कि उसके पास रुपया कुछ भी शेष नहीं रह गया था। जो कुछ नक़दी गहने उसके पास रहे होंगे वह सब उसका वह उठाईगीरा पति साफ़ करके ले गया है। जो दो-चार गहने वह पहने थी उन्हें भी वह गुंडा बक्स में सँभालकर रख देने का बहाना रचकर उससे माँगकर उड़ा ले गया है। केवल जो चूड़ियाँ वह पहने थी, और एक अँगूठी के सिवा उसके पास और कुछ भी शेष नहीं है। इसका नतीजा यह हुआ कि किसी डाक्टर का कोई इलाज नहीं हो पा रहा है। उसके दो नौकर भी भाग गये हैं, केवल एक नौकर अभी तक उसका काम कर रहा है, वह भी आधे मन से काम करता है और किसी भी दिन उसका गला घोंटकर, उसके शेष गहने और कपड़े-लत्ते उठाकर चंपत हो सकता है क्योंकि वह स्वयं पलंग पर उठ-बैठ भी नहीं सकती।'

"मैं आतंक से सिहर उठा। मेरे सारे शरीर के रोएँ सुई की नोंक की तरह खड़े हो गये, कुछ अरसे तक मैं पत्थर की मूर्त्ति की तरह उसकी ओर शून्य दृष्टि से ताकता रहा, उसके बाद अचानक जैसे किसी दुःस्वप्न से चौंकता हुआ बोल उठा, 'पर वह रहती कहाँ है, उसका ठिकाना जल्दी मुझे बताओ, जल्दी।'

"उसने गिरगाँव की एक अप्रसिद्ध गली का नाम और नम्बर बताया, मैंने कहा, 'तुम्हें मेरे साथ चलना होगा, अभी। मुझे गली का पता लगाने में देर लग सकती है।'

"उसे अखबारों में इस सनसनीखेज़ समाचार की रिपोर्ट भेजने की जल्दी हो रही थी, इसलिये वह टालमटूल करने लगा, पर मैं उसका हाथ पकड़-कर ज़बरदस्ती उसे घसीटकर अपने साथ ले गया।

"हम लोग एक डाक्टर को साथ लेकर गिरगाँव के एक गंदे मुहल्ले की एक तंग और गंदी गली के भीतर पहुँचे। मेरे अख़बारी मित्र ने हमें एक मकान के दरवाज़े पर लाकर खड़ा कर दिया। मकान काफ़ी बड़ा

और ऊँचा था । जब हम लोग जीने से चढ़कर ऊपर पहुँचे तो मालूम हुआ कि उस मकान में बहुत-से महाराष्ट्रीय, गुजराती और मदरासी परिवार किराये पर रहते हैं। मेरा मित्र हमें तीसरी मंजि़ल पर ले गया। बाहर से उसने किवाड़ खटखटाया, कमरा खुला हुआ था, केवल एक अधमैला पर्दा दरवाजे पर टँगा हुआ था। भीतर किसी के क्षीण स्वर में कराहने की आवाज़ स्पष्ट सुनाई दे रही थी । मैंने अनुमान लगा लिया वह सम्मोहिनी की ही आवाज़ होगी, यद्यपि उसकी जिस आवाज़ से मैं वर्षों से परिचित था, उससे आज की आवाज़ का मेल रंचमात्र भी नहीं मिलता था। एक गुजराती नौकर ने पर्दा हटाकर अपनी सूरत दिखाई और कुछ कर्कश स्वर में मुझसे पूछा, 'आप क्या चाहते हैं ?' मैंने पूछा, 'सम्मोहिनी देवी यहीं रहती हैं ?'

"जी हाँ ! पर वह बहुत बीमार पड़ी हैं, उनसे आप मिल नहीं सकते ।'

"उनकी बीमारी के कारण ही तो हम उनसे मिलने आये हैं। डाक्टर भी हमारे साथ है, उनसे जाकर बोल दो ।' मैंने अपना नाम जान-बूझकर नहीं बताया, नौकर भीतर चला गया ।

"थोड़ी देर बाद वह वापस आया और बोला, 'आप लोग भीतर चले आइये ।'

"भीतर जाकर हम लोगों ने देखा प्रेतात्मा की तरह एक स्त्री किसी अज्ञात रोग से छटपटा रही है । कमरे के भीतर अंधेरा छाने लगा था, इसलिये मैं बारीकी से रोगिणी के मुख की पहचान नहीं कर पाया, पर रोगिणी ने मुझे पहचान लिया था। उसने क्षीण कंठ से कराहने के स्वर में कहा, 'आह, तुम !' और फिर रोने का एक अजीब टूटा-फूटा शब्द उसके मुँह से जैसे बरबस निकल पड़ा । मैंने नौकर से बत्ती जलाने के लिये कहा । उसने बिजली का बटन दबा दिया । बत्ती जलने पर मैंने देखा कि सम्मोहिनी के रूप का सारा सम्मोहन तो नष्ट हो ही चुका था, साथ ही उसके मुख की आकृति अत्यन्त वीभत्स और भयावनी हो उठी थी । न जाने किस राक्षस रोग ने उसके भीतर का सारा सत्व चूसकर उसके

ऐसा मुख को जैसे झुलस दिया था, पर उस ऊपरी वीभत्सता के नीचे मुझे एक सकरुण भाव छिपा हुआ दिखाई दिया जिसने मेरे हृदय को द्रवित कर दिया। मेरे मुँह से बरबस निकल पड़ा, 'सम्मोहिनी यह तुम्हें क्या हो गया ?'

"सम्मोहिनी ने एक बार विवश-कातर दृष्टि से मेरी ओर देखा, उसके बाद चुपचाप टपाटप आँसू गिराती हुई वह मेरी ओर से मुँह फेरकर करवट बदलकर लेट गई।

"मैंने अपने मन की सारी पीड़ा को विष की घूँट की तरह पीकर, अपने उमड़ते हुए आँसुओं को बरबस दबाते हुए कहा, 'सम्मोहिनी, डाक्टर साहब आये हैं, इन्हें परीक्षा करने दो।'

"डाक्टर का नाम सुनते ही सम्मोहिनी ने फिर एक बार करवट बदली और बड़े ग़ौर से डाक्टर की ओर देखने लगी। उसके बाद बिना कुछ कहे कराहने लगी। डाक्टर ने पहले उसकी नब्ज़ देखी, उसके बाद सिर पर हाथ लगाया, और उसके बाद स्वर की नली से और भी अधिक महत्व-पूर्ण बातें जानने की कोशिश कीं। जब यह काम भी हो गया तो उसने नौकर से पूछकर रोगिणी के बाहरी लक्षणों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करनी शुरू की। नौकर ने संकोच के साथ दो-एक ऐसी बातों का संकेत दिया जिससे डाक्टर के हृदय में पहले से जमा हुआ संदेह विश्वास में बदल गया। उसने कहा कि एक विशेषज्ञ डाक्टरनी को बुलाना होगा। उसने एक विशेषज्ञ डाक्टरनी का नाम और पता बताया। मैं यह प्रार्थना करके कि मेरे आने तक वह रोगिणी को न छोड़ें, डाक्टरनी को बुलाने चला गया।

"प्रायः आधे घंटे बाद पारसी महिला डाक्टर को साथ लेकर मैं वापस चला आया, पारसी महिला से डाक्टर ने अंगरेज़ी में बातें करके सारी स्थिति समझाई और अपना संदेह भी उसके आगे प्रकट किया।

'वे लोग धीरे से पर स्पष्ट सुनाई देनेवाली आवाज़ में बातें कर रहे थे। उनकी बातों से मुझे मालूम हुआ कि सम्मोहिनी के गर्भपात होने का संदेह किया जाता है। डाक्टरनी ने हम सब लोगों को दूसरे कमरे में चले जाने का आदेश दिया। जब हम सब वहाँ से उठकर चले गये तो वह

स्वभावतः रोगिणी की परीक्षा में लग गई होगी। प्रायः पंद्रह मिनट के बाद उन्होंने हम लोगों को बुलाया। सूचित किया कि रोगिणी का गर्भपात हुआ है; तीन मास का गर्भ गिरा है। उन्होंने अपना यह भी संदेह प्रकट किया कि किसी प्रकार की चोट लगने से गर्भ गिरा है। इतनी सब बातें सम्मोहिनी के सामने ही हुईं, पर सब कुछ सुनने पर भी वह एक शब्द भी न बोली, केवल बीच में कराहती और करवटें बदलती रही। डाक्टरनी अपने 'बैग' में एक विशेष प्रकार के इंजेक्शन का सामान लेती आई थी। डाक्टर की राय लेकर उसने इंजेक्शन दिया और उसी की राय लेने के बाद उसने दो दवाइयों का नुसख़ा काग़ज़ के टुकड़े पर लिख दिया। मैंने दोनों को फीस देकर विदा किया, और उसके बाद नौकर को हिदायतें देकर दवाएँ लाने स्वयं बाहर चला गया। आने के बाद मैंने विधिपूर्वक, उपयुक्त अनुपात के साथ उपयुक्त समय पर रोगिणी को दवाएँ देनी शुरू कीं। घर में न दूध का ठीक प्रबन्ध था न रोगिणी के भोजन का। मैंने दोनों की उचित व्यवस्था करवा दी, और उसी दिन एक नौकरानी खोजकर उसे हर समय रोगिणी की सेवा में लगे रहने के लिये नियुक्त किया। डाक्टर और डाक्टरनी दोनों को मैंने दुबारा शाम को बुलाया और एक मेटर्निटी नर्स को भी प्रतिदिन एक बार आकर रोगिणी की शिकायतें मालूम कर जाने के लिये नियुक्त करवा दिया। गरज़ यह कि परिचर्या में कोई भी बात अपनी तरफ से मैंने उठा न रखी।

"फल यह हुआ कि प्रायः एक सप्ताह बाद सम्मोहिनी की हालत बहुत सुधर गई, और दूसरे हफ़्ते के अन्त में वह एकदम चंगी हो गई। इन दो हफ़्तों के भीतर उसके साथ मेरी कोई विशेष बात नहीं हुई। मेरे साधारण प्रश्नों का उत्तर वह साधारण ही ढंग से कुछ थोड़े से संकोच के साथ दे दिया करती थी। उसने मुझसे यह भी न पूछा कि मैं इतने दिनों तक कहाँ था, और उसकी बीमारी का हाल और उसका पता मुझे कैसे मालूम हुआ। पर दो हफ़्ते के बाद जब वह बिल्कुल अच्छी हो गई, और पलंग से उठकर बाहर-भीतर जाने लगी, तो एक दिन एकान्त में मौक़ा पाकर

मैं अचानक उससे यह प्रश्न कर बैठा, 'तुम्हारे पति का कोई संवाद मिला? इस समय वह हैं कहाँ? बम्बई में या···?'

"मैं मानता हूँ कि इस ढंग से मुझे प्रश्न नहीं करना चाहिये था। पर उससे भीतरी बातों की चर्चा चलाने का कोई दूसरा तरीक़ा उस समय मुझे सूझा ही नहीं। मैं अपना प्रश्न पूरा न कर पाया कि मैंने देखा कि सम्मोहिनी का चेहरा अचानक लुहार की भट्ठी की दहकती हुई आग की तरह तमतमा उठा है। मैं अत्यन्त भीत हो उठा और मैंने चुप्पी साध ली। उसका इतने दिनों का संकोच-भाव जैसे पल भर में उस भट्टी की आँच में भाप बनकर उड़ गया। उसने अत्यन्त दृढ़ किंतु घृणा और आक्रोश-भरे शब्दों में कहा, 'उस नीच और धूर्त दानव की चर्चा चलाकर तुम जान-बूझकर मेरे मर्म के घाव पर चोट करना चाहते हो। पर जान लो, उस घाव के साथ छेड़खानी करने से उसमें से ऐसी विषैली मवाद निकलेगी जिसका लेशमात्र भी चेप तुम्हारे सारे शरीर को, तुम्हारी आत्मा को कोढ़ से जलाये बिना न रहेगी।' यह कहकर उसने आँखों से आँसू गिराने शुरू कर दिये। मैं मर्माहत होकर रह गया। अत्यन्त दीन भाव से दोनों हाथ जोड़ते हुए मैंने करुण प्रार्थना के स्वर में कहा, 'सम्मोहिनी, अगर मेरे मुँह से कोई ग़लत बात निकल पड़ी हो तो मैं हृदय से तुमसे क्षमा चाहता हूँ। मेरी इस बात का विश्वास करो कि मैंने जान-बूझकर तुम्हें चोट पहुँचाने के उद्देश्य से प्रश्न नहीं किया। मेरे स्वभाव का बहुत कुछ परिचय तुम्हें है। यह होते हुए भी अगर तुम यह संदेह करो···।'

'मेरी बात बीच ही में काटकर अत्यन्त उत्तेजित स्वर में वह बोल उठी, 'हाँ, तुम्हारे स्वभाव से मैं बहुत अच्छी तरह परिचित हूँ, केवल तुम्हारे ही स्वभाव से नहीं, तुम्हारी जाति-बिरादरी के और भी बहुत-से हीन मनोवृत्ति वाले पुरुषों के स्वभाव का परिचय मुझे मिल चुका है···।'

"बिना बादल के वज्रपात-से हतबुद्धि व्यक्ति की तरह मैं सन्न रह गया, वह कहती चली गई, 'यह भूलकर भी न समझना कि चूँकि तुमने अपनी सेवा-टहल से मुझे मरने से बचाया, इसलिये मैं तुम्हारी

कृतज्ञ रहूँगी, नहीं, तुमने कृतज्ञता के योग्य कोई भी काम नहीं किया है। मैं खूब जानती हूँ कि तुमने मुझे मरने से क्यों बचाना चाहा; तुम्हारी त्याग और सेवा की भावना के नीचे मुझे स्वयं अपनी आँखों में लज्जित करने का उद्देश्य छिपा था।'...

"मैंने विमूढ़ भाव से, अत्यन्त घबराहट के स्वर में प्रायः फुसफुसाते हुए कहा, 'सम्मोहिनी ! सम्मोहिनी ! तुम्हें क्या हो गया है ? तुम यह सब क्या कह रही हो ?'

"पर वह मेरी बात का कुछ ख्याल न करके अनमने भाव से मेरी ओर देखती हुई कहती चली गई, 'अपने छोटे-से जीवन में पुरुषों की घोर हीनता और स्वार्थ से भरी घृणित वृत्तियों के सम्बन्ध में जो अनुभव मुझे हुए हैं उन्होंने जीवन और जगत् के सम्बन्ध में एक बिल्कुल ही नयी दृष्टि दे दी है। मेरी आँखे इस हद तक खुल चुकी हैं कि भविष्य में मेरे लिये कोई खतरा शेष नहीं रह गया है, पर इतने दिनों तक कैसी भयंकर भूल ने मेरे मन को छा रखा था। मैं अब मानती हूँ कि सृष्टिकर्ता ने मेरे हृदय की मूल भावनाओं को ही एक पैदाइशी भूल की नींव पर खड़ा कर रखा था। जीवन में मैंने कोई भाई अपनी माँ की कोख से नहीं पाया, फल यह हुआ कि बचपन में अपने साथ की दूसरी लड़कियों को अपने भाइयों पर स्नेह बरसाते देखकर मेरी यह सहज आकांक्षा मचल-मचलकर रह जाती थी। मैं अपनी सहेलियों के छोटे-छोटे प्यारे-प्यारे भाइयों पर अपने हृदय में उथला हुआ सारा स्नेह उड़ेल देने के लिये सब समय विकल रहती थी, पर अपने भीतर के किसी संकोच के कारण ऐसा करने से रह जाती थी। जब मैं बड़ी हुई तो अपने उस विकृत संकोच पर मैंने ऐसी ज़बर्दस्ती विजय पाई कि मेरा निस्संकोच भाव दूसरी चरम और अस्वाभाविक स्थिति पर पहुँच गया। मैं अपने से—या कुछ बड़े—किसी भी सुन्दर और सुशील लड़के को देखती तो उसे अपने भाई की तरह प्यार करने के लिये अधीर हो उठती। स्त्री और पुरुष के प्रेम-संबंध के इस रूप को मैं सहज स्वाभाविक और सुन्दर समझती थी। जब मैं सयानी हो गई और

अपनी हमजोली लड़कियों से और उपन्यासों और कविताओं की पुस्तकों से स्त्री-पुरुष का प्रेम-सम्बन्ध के दूसरे रूप का ज्ञान हो गया, तो भी मेरे हृदय में प्रेम का वही रूप, भाई-बहन के पारस्परिक स्नेह का भाव ही, घर किये रहा। निश्चय ही वह मेरे स्वभाव की एक विचित्रता थी। पर विचित्रता हो चाहे कुछ हो, वह मेरे भीतर बड़े गहरे में अपनी जड़ जमाये थी। जब लखनऊ में तुमसे मेरा परिचय हुआ, और तुमने बड़ी भावुकता के साथ अपनी कविता पढ़ी, और बड़े ही स्नेह और सम्मान के साथ तुम मेरे साथ पेश आये तो भ्रातृ प्रेम पूरे वेग से उमड़ उठा। तुमसे मैंने नहीं बताया कि जिस दिन उस कविता के ज़रिये से तुम्हारे हृदय की भावुकता का बाँध टूट पड़ा, उसी दिन रात के समय मैं होटल वाले अपने कमरे में पलंग पर लेटे-लेटे खूब रोई। बड़े सुख के वे आँसू थे जो फिल्मी दुनिया के हृदयहीन और विलासी वातावरण में मेरे लिये दुर्लभ बने हुए थे। उसके बाद मैं जो तुम्हें बलपूर्वक अपने साथ बम्बई भगा ले गई, वह भी मेरे अतृप्त भ्रातृप्रेम की प्रतिक्रिया ही थी। पर तुमने मेरे उस मनोभाव को बिल्कुल ही उलटा समझा। कामुकता के सिवा स्त्री-पुरुष के बीच का कोई दूसरा सम्बन्ध तुम्हारे लंपट पुरुष-जाति को मान्य नहीं है। तुमने जब विवाह का प्रस्ताव किया तो मैं स्वभावतः आतंकित हो उठी। उसके बाद गोपीनाथ से जब मेरा परिचय हुआ तो उसके प्रति भी मेरे मन में तुम्हारी ही तरह स्नेह-भावना जाग उठी। मैं इस हद तक भोली निकली, हालाँकि कोई भी धूर्त पुरुष मेरे इस भोलेपन पर अविश्वास की हँसी हँसेगा, कि तुम्हारे संसर्ग से जो तजुर्बा मुझे हुआ उससे कोई शिक्षा मैं न ले सकी और गोपीनाथ को मुक्त हृदय से अपना स्नेह देती रही। अंत में जब मुझे मालूम हुआ कि वह तुम्हारी ही तरह मेरे स्नेह का कुछ दूसरा ही अर्थ लगाये बैठा था तो बहुत देर हो चुकी थी। उस भूल का निराकरण उस आत्महत्या से हुआ। उस दुर्घटना से मैं बहुत ही विचलित हुई। पर क्रूर नियति मेरी मति को बार-बार इस क़दर अचेत बना देती थी कि मैं पिछली दुर्घटना को भूलकर उस अनुभव से कोई लाभ न उठाकर, किसी दूसरे

व्यक्ति के साथ ठीक उसी प्रकार की भूल कर बैठती थी। जब और भी दो-एक दुर्घटनाएँ मेरी इस अनोखी और भोली—हाँ भोली, मैं सच कहती हूँ—स्नेह-भावना के कारण हुईं तो अन्त में मेरी आँखें कुछ खुलीं। इसलिये जब अंतिम व्यक्ति—हालाँकि उस नराधम और नारकीय जीव का उल्लेख किसी भी रूप में करना मेरे लिये शूल की घातक पीड़ा से अधिक कष्ट-दायी है—जब मेरे हृदय के उसी कोमल और करुण भावना का अधिकारी बनने के बाद एक दिन मुझसे विवाह का प्रस्ताव कर बैठा तो मैंने केवल इस डर से प्रस्ताव स्वीकार कर लिया कि कहीं वह भी कोई आत्मघाती कांड न कर बैठे। उसका फल मुझे यह मिला। तुम निश्चय ही उसकी करतूत से परिचित हो चुके हो। मुझे किस दशा में और कैसी स्थिति में छोड़कर वह चला गया है, यह बात तुमसे छिपी नहीं है। पर जब मैं उस पिशाच के बारे में सोचती हूँ तो मुझे कुछ भी आश्चर्य नहीं होता, कारण यह कि मैं इतने वर्षों के अनुभव के बाद एक निश्चित परिणाम पर पहुँच गई हूँ—वह यह कि प्रत्येक पुरुष, चाहे वह कितना कवि, लेखक, समाज-सुधारक या और किसी क्षेत्र का बड़ा आदमी क्यों न हो, स्त्री के सम्बन्ध में उसकी श्वान-वृत्ति अधिक उमड़ी हुई रहती है। सुकुमार वृत्तियाँ भी कभी-कभी उसके व्यवहार में प्रकट अवश्य होती हैं, पर यह श्वान-वृत्ति उसकी सब सुकुमार भावनाओं को दबाकर उस पर आसानी से विजय पा जाती है। चूँकि अब मैं यह बात भली भाँति समझ गई हूँ, इसलिये अब मुझे किसी भी बात का डर नहीं रह गया है। तुम मेरे ख़िलाफ़ चाहे कैसा ही भयंकर जाल क्यों न रचना चाहो, मेरा कुछ भी बिगाड़ सकने की शक्ति तुममें नहीं है। कोई पुरुष अब मेरे कारण चाहे आत्महत्या करे, चाहे किसी का ख़ून चाहे स्वयं मुझे ही जान से मार डालने पर आमादा क्यों न हो जाय, मैं अब किसी भी बात से, किसी भी दुर्घटना से तनिक भी विचलित नहीं होऊँगी। मैं पुरुष-जाति की मूल भावनाओं से सदा के लिये परिचित हो चुकी हूँ। इसलिये नमस्ते ! यदि तुमने मेरी परिचर्या करके मुझे मरने से बचाकर मेरे साथ फिर एक बार किसी प्रकार का घनिष्ठ

रूप से संपर्क स्थापित करने का इरादा किया हो तो चुपचाप अभी यहाँ से चले जाओ, नहीं तो तुम्हारे लिये इस बात का नतीजा अच्छा नहीं होगा। मैं पहले ही कह चुकी हूँ, मैं इस बात के लिये बिल्कुल ही कृतज्ञ नहीं हो सकती कि तुमने मुझ मरती हुई को जिलाया है। तुम्हारी आँखें मुझे बता रही हैं कि तुमने निपट स्वार्थ की भावना से मुझे लज्जित करके अपने वश में करने और अपनी विकृति आकांक्षा की पूर्ति के उद्देश्य से मेरी सेवा-टहल की है। ऐसी सेवा के लिये कृतज्ञ होना नादानी है। इसलिये नमस्ते! तुम अपने रास्ते नापो और मैं अपने।'

"यह कहकर वह अचानक उठ खड़ी हुई और भीतर के कमरे में जाकर अन्दर से चिटखनी लगी दी। मैं भौंचक्क-सा देखता ही रह गया। फिर भी प्रायः दो घंटे तक मैं बाहर इस आशा में बैठा रहा कि उत्तेजना शान्त होने पर वह बाहर निकले और मैं एक बार अंतिम बार समझा-बुझाकर अपने मन की सच्ची हालत उसे समझा दूँ। पर वह बाहर निकली ही नहीं। अन्त में तंग आकर काफ़ी खीझकर मैं वहाँ से चल दिया। उस घटना ने मेरे हृदय को इस कदर आतंकित कर दिया कि उसके कुछ ही दिन बाद मैं बम्बई छोड़कर युक्तप्रान्त चला आया। प्रायः एक वर्ष बाद मैंने सुना कि वह फिर किसी एक फिल्म-कम्पनी में काम करने लगी है।"

सूट-बूटधारी सज्जन ने एक दबी हुई आह के साथ अपनी कहानी समाप्त की। खद्दरधारी सज्जन बड़ी तन्मयता से उसकी कहानी सुन रहे थे। कहानी समाप्त होने पर वह दीवार से पीठ हटाकर पाँव फैलाकर पहले की अपेक्षा कुछ अधिक आराम के साथ बैठ गये, और कुछ देर तक किसी एक विशेष विचार में मग्न हो रहे। उसके बाद बोले, "कुछ स्त्रियाँ बड़े ही विचित्र स्वभाव की होती हैं।"

"और कुछ पुरुष भी।" कहकर सूटधारी सज्जन ने एक अनोखी सांकेतिक मुस्कान से खद्दरधारी महाशय की ओर देखा, और फिर जेब

में हाथ डालकर पाकिट से उसने एक सिगरेट निकाली और उसे जलाकर पीने लगा। कुछ मुद्दत बाद वह बोला, "पर आज गाड़ी इतनी लेट क्यों है। मैं ज़रा जाकर पूछता हूँ कि बात क्या है।" यह कहकर वह वहाँ से उठकर बाहर प्लेटफ़ार्म पर चला गया।

सरदार

जब घुड़सवारों का वह दल जंगल के बीच में आकर ठहरा तब पूरब की ओर के बादलों में कुछ-कुछ लाली छाने लगी थी। लड़की के साथ जो बुड्ढा घोड़े पर सवार था उसने नीचे उतरकर लड़की का हाथ पकड़ा और उसे भी धीरे से जमीन पर उतारा। लड़की बेंत की लता की तरह थर-थर काँप रही थी। वह लंबे कद की थी। रंग उसका गोरा था। उसके मुख पर किसी कठोर मानसिक पीड़ा और साथ ही शारीरिक थकान के चिह्न स्पष्ट अंकित थे। वह एक भूरे रंग का कीमती शाल ओढ़े थी फिर भी बाहर की ठंड और भीतर के भय अथवा विषाद की भावना के कारण बरबस काँप रही थी।

रेगिस्तान में नखलिस्तान की तरह विशाल जंगल के बीच में वह स्थान था। ऐसा जान पड़ता था कि घने वन के पेड़ों को काटकर बीच में वह स्थान तैयार किया गया है। आठ-दस तम्बू थोड़े-थोड़े-से फासले पर खड़े थे। बीच में एक तम्बू ऐसा था जो अगल-बगल के सब तम्बुओं से बड़ा था। उसके बाहर एक पगड़ीधारी जवान हाथ में बंदूक लिये खड़ा था। उस जवान से लड़की के साथ वाले बुड्ढे ने प्रश्न किया, "सरदार कहाँ है ?"

जवान ने उत्तर दिया, "भीतर बैठे हैं। चाय पी रहे हैं।"

बुड्ढा लड़की का काँपता हुआ हाथ पकड़कर धीरे से उस बड़े तम्बू की ओर बढ़ा। तम्बू के भीतर प्रवेश करते ही लड़की ने देखा प्रायः तीस वर्ष का एक स्वस्थ और सुंदर पुरुष काले रंग के रोएँदार ऊन का ओवरकोट और उसी चीज़ की बनी बड़े आकार की टोपी पहने एक मेज के पास बैठा हुआ एक हरे रंग के प्याले से चाय पी रहा है। तम्बू की सजावट बड़ी

ठाटदार थी। नीचे फ़र्श पर कीमती कालीनें और बाघ, चीते, हिरन, खरगोश आदि की खालें बिछी हुई थीं।

कुर्सियों और सोफाओं पर मखमली गद्दे बिछे हुए थे। कनात की दीवारों पर कुछ चित्र प्राकृतिक दृश्यों के टँगे थे। वह व्यक्ति चाय पीना छोड़कर तीव्र कौतूहल-भरी दृष्टि से लड़की की ओर देखता रह गया। लड़की ने आँखें नीची कर लीं और रोनी-सी सूरत बनाए जूड़ाग्रस्त व्यक्ति की तरह काँपती रही। यदि बुड्ढे ने उसका हाथ मजबूती से न पकड़ा होता तो वह निश्चय ही नीचे गिर गई होती।

बुड्ढे ने बड़े अदब से सलाम बजाते हुए काले कोटधारी व्यक्ति से कहा, "सरदार, यह वही लड़की है जिसके बारे में नियाज ने उस दिन बातें की थीं।"

सरदार की त्यौरियाँ चढ़ गईं। उसका सुन्दर और गोरा मुख असाधारण रूप से तमतमा उठा। उसने और एक झलक लड़की की ओर देखकर अत्यन्त गुरुगंभीर वाणी में—जो उसकी आयु और व्यक्तित्व को देखते हुए अस्वाभाविक लगती थी—बुड्ढे से कहा, "मैंने नियाज को मना कर दिया था न कि लड़की पर हाथ न उठावे और किसी तरह की हानि न पहुँचावे ?"

"हाँ सरदार" बुड्ढे ने सिर नीचा किए हुए कहा।

सरदार ने फिर एक बार कनखियों से लड़की की ओर देखा।

"सरदार, नियाज का कसूर माफ कर दो। बनवारी बचपन से उसका साथी रहा है। बनवारी के साथ जैसी ज़्यादती की गई है वह तुमसे छिपी नहीं है। अपने साथी का बदला चुकाए बिना उससे किसी तरह रहा नहीं गया। उसका कहना है कि सरदार चाहे उसे गोली मार दे, उसे मंजूर है। पर सरदार, वह लठ्ठमार और गँवार है किंतु अपने साथी के लिये जान देने को तैयार है। लड़की के साथ कोई ज़्यादती नहीं की गई है। मैंने जब देखा कि नियाज लड़की को भगाने पर ही तुला है तो कोई चारा न देखकर लड़की की हिफाजत का भार मैंने अपने ऊपर ले लिया।"

"तो तुम भी इस षड्यंत्र में शामिल हो।"

"नहीं सरदार, पर मैं तुम्हें अपनी बात कैसे समझाऊँ।"

कुछ देर तक तम्बू के भीतर एक भयावना सन्नाटा छाया रहा, उसके बाद सरदार ने अत्यंत दृढ़ता से कहा, "नहीं तोताराम, मैं नियाज को माफ नहीं कर सकता। उसे इसी दम गिरफ़्तार कर लो। मैं बाद में बताऊँगा कि उसे क्या सजा देनी होगी।"

"जो हुक्म सरदार" कह बुड्ढे तोताराम ने फिर एक बार अदब से सलाम किया और उसके बाद लड़की का हाथ पकड़कर उसे बगल वाले सोफा पर बिठाते हुए बोला, "बेटी, तुम आराम से बैठ जाओ, घबराओ नहीं।"

तोताराम के चले जाने पर सरदार के मुख पर से क्रूर और कठोर भाव पल में विलीन हो गया और उसके स्थान पर अत्यंत मधुर और निरतिशय कोमल छाया आश्चर्यजनक रूप से विभासित हो उठी। लड़की ने कनखियों से सरदार के मुख के उस भाव को देख लिया था और संभवतः मन ही मन तनिक आश्वस्त भी हो उठी।

सरदार ने कहा, "मुझे अत्यंत खेद है कि मेरे आदमियों ने आपके साथ इस तरह का व्यवहार किया। आप निश्चिंत रहें। मैं आपका बाल भी बाँका नहीं होने दूँगा।" आप तनिक सुस्ता लीजिये और यदि अनुचित न समझें तो एक प्याला गरम चाय पी लीजिये। आप ठंड से ठिठुर रही हैं।"

लड़की ने इस बार संकोचहीन पूर्णदृष्टि से सरदार की ओर देखा। उसका कौतूहल असाधारण रूप से जाग उठा था। उस घोर जंगल के बीच में डाकुओं के सरदार के मुँह से इस तरह की सुसंस्कृत और सभ्य भाषा में आश्वासन-भरी ऐसी मधुर वाणी सुनने की आशा का स्वप्न भी वह नहीं देख सकती थी। इसके अतिरिक्त सरदार के मुख का सौंदर्य इस समय चौगुनी तीव्रता से लड़की की बाहरी और भीतरी आँखों के आगे चमक रहा था। अपनी उस घोर दुर्दशाग्रस्त अवस्था में भी उस

असाधारण सुन्दरता के प्रदीप्त आकर्षण की उपेक्षा उसका मन चाहने पर भी नहीं कर पा रहा था।

पर वह बोली कुछ नहीं और कुछ ही क्षण बाद उसने सिर नीचा कर लिया और अंचल से मुँह ढाँप लिया। आधी रात में जब अचानक उसे मालूम हुआ था कि डाकुओं ने उन लोगों का मकान घेर लिया और कुछ समय बाद डाकू बलपूर्वक उसे पकड़कर उसके और उसकी माँ के रोने-बिलखने की तनिक भी परवाह न कर उसे भगा ले गये थे, तब से लेकर इस समय तक एक भौतिक भय और भ्रांति से उसके चित्त में एक अजीब-सी जड़ता छायी हुई थी। अब सरदार की बातों से पहली बार उसके भीतर भावावेग की लहरें उठने लगीं और अचानक वे लहरें पूरे वेग से उमड़ उठीं। वह फफक-फफक कर रोने लगी।

सरदार अपनी कुर्सी पर से उठकर उसके निकट आकर खड़ा हो गया और उसे हर तरह की दिलासा देने की चेष्टा करने लगा। पर उसकी बातों से लड़की शान्त होने के बजाय और अधिक भावाकुल हो उठती थी। अन्त में सरदार ने हार मानकर घंटी बजाई।

तत्काल बाहर से एक आदमी दौड़ा हुआ चला आया। सरदार ने कहा, "तोताराम को बुला लाओ।"

आदमी आदाब बजाकर चला गया। थोड़ी देर बाद तोताराम उपस्थित हुआ। सरदार ने कहा, "तोताराम, यह बहुत घबरायी हुई हैं। इन्हें तुम अपने साथ ले जाओ और किसी तरह समझा-बुझाकर चाय पीने और नाश्ता करने को राजी करो। दिन भर इन्हें कड़ी निगरानी में रखना। एक सेकेन्ड भी अपनी आँखों की ओट न रखना। इस मामले में मुझे तुम्हारे सिवाय और किसी दूसरे आदमी का विश्वास नहीं है। अंधेरा होते ही इन्हें कुछ माल-मत्ता के साथ सुरक्षित अवस्था में इनके घर वापिस पहुँचा देना। देखना, जो कुछ मैंने कहा है उससे तनिक भी अन्तर पड़ने न पावे। जाओ इन्हें ले जाओ।"

"जो हुक्म सरदार।" कहकर बुड्ढे ने धीरे से लड़की का हाथ पकड़ा

उसके हाथ में एक थैली गहनों और रुपयों से भरी देकर वह लौट चला।

कृष्ण पक्ष की अंधेरी रात। पर तोताराम ऐसे चल रहा था जैसे अभी दिन हो। घोड़े के पास पहुँचकर फुरती से उस पर चढ़ा और पीठ थपथपाते ही घोड़ा हवा की रफ्तार से सरपट भागा।

फू के जमींदार ठा० प्रतापसिंह की लड़की अपर्णा जब डाकुओं के यहाँ से लौटकर आई तो गाँववालों ने उसके चरित्र पर ऐसे व्यंगबाण कसने शुरू किये कि ठाकुर साहब को लड़की को लेकर गाँव में रहना असंभव हो गया। प्रारंभ में ठाकुर साहब ने बड़ा कड़ा रुख अख्तियार किया। जब जिस किसी के बारे में उन्हें मालूम हुआ कि वह अपर्णा के खिलाफ आलोचना कर रहा है तो उसे पिटवाकर उल्टे उसके सामाजिक बहिष्कार के उद्योग में उन्होंने कोई बात उठा नहीं रखी पर बाद में जब उन्होंने देखा कि एक-दो नहीं बल्कि सभी व्यक्ति उनके और उनकी लड़की के खिलाफ खुल्लमखुल्ला आलोचनाएँ करने लगे हैं तो उन्होंने अपने दमन-चक्र की व्यर्थता देखकर गाँव छोड़कर चल देना ही उचित समझा। लड़की शहर में कालेज में पढ़ती थी। गरमी की छुट्टियों में हवा-बदली के लिये गाँव में आई हुई थी। ठाकुर साहब ने निश्चय किया कि अगले साल से लड़की को गरमियों में भी शहर ही में रहने देंगे।

पर डाकुओं ने उनके यहाँ जो लूट मचाई थी उस घटना का ऐसा घातक प्रभाव अनजान में उनके भीतर पड़ता चला गया कि उन्हें सचेत होने का मौका ही नहीं मिला और एक दिन हृद्रोग के फलस्वरूप वह चल बसे। जीवन में जो-जो दुर्द्धर्ष कर्म उन्होंने किये थे उन पर पश्चात्ताप करने का अवसर भी उन्हें प्राप्त नहीं हो सका।

उनकी मृत्यु के बाद जमींदारी में दबे हुए विद्रोह की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ऐसी अराजकता फैल गई कि सरकार को बड़े कड़े उपाय उस बगावत को दबाने के लिये काम में लाने पड़े। जमींदारी का प्रबंध कोर्ट

आफ वार्ड्स के अन्तर्गत आ गया और अपर्णा और उसकी माँ को शहर में बैठे-बैठे एक साधारण-सी रकम अपने खर्च के लिये मिलने लगी। अपर्णा ने एम० ए० तक पढ़ाई जारी रखी। पर ललित कलाओं की ओर उसका झुकाव दिन पर दिन अधिक बढ़ता चला जाता था। वह चित्रकला और संगीत की शिक्षा भी साथ-साथ प्राप्त करने लगी।

शहर में एक बार अखिल भारतीय संगीत-सम्मेलन का विराट समारोह हुआ। देश के विभिन्न भागों से सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ आये हुए थे। स्थानीय संगीतज्ञों को भी अपनी कला के प्रदर्शन की अच्छी सुविधा दी गई।

उस दिन संध्या के समय अपर्णा को भी गाना था। कार्यक्रम पहले ही निर्धारित हो चुका था। देश के विख्यात कलाविदों की मजलिस में जाकर ख्याति प्राप्त करने का लोभ वह न सँभाल पाई थी इसलिये उसने अपनी सहमति दे दी थी। पर ऐन मौके पर वह हौलदिल हो उठी। उसे अपने पर विश्वास न रहा। जीवन में पहली बार वह भरी सभा के बीच में गाने जा रही थी। बुड्ढे मराठे उस्ताद ने उसे ढाढ़स बँधाया। बड़ी कठिनाई से वह राजी हुई। उसका नाम घोषित किया गया। उस्ताद के साथ मंच पर आकर वह बैठ गई। दर्शकों की ओर उसने देखकर भी नहीं देखा। उसे एकमात्र धुन थी अपने गायन की सफलता की।

अपर्णा ने अपने हाथ में सितार ले लिया और उस्ताद ने तबला बजाना शुरू किया।

अपर्णा सितार में सुर भरने लगी। उसे भीमपलाशी गाना था। उस्ताद ने जब सम पर जमा हुआ हाथ मारा तो अपर्णा के हृदय का तबला भी जैसे ठनक उठा। अपनी लम्बी-लम्बी पतली-पतली अँगुलियों से सितार में सुर भरती हुई वह गाने लगी। जब उसने पहली बार स्थायी पद गाया तो उसे लगा कि वह निश्चित रूप से असफल सिद्ध होगी। पर तत्काल ही वह सँभल गई। अन्तरा गाते ही उसने अपनी अधखुली आँखें पूरी तरह से बंद कर लीं। और जनता की उपस्थिति का तनिक भी

ख्याल न करके भावमग्न होकर गाने लगी। समस्त श्रोता-मंडली स्तब्ध भाव से गद्गद् और तन्मय होकर सुन रही थी।

काफी देर तक वह आँखें बंद किये रही। बीच में एक बार अचानक उसकी आँखें न जाने कैसे खुल पड़ीं क्योंकि उसने अपनी इच्छा से आँखें खोलना नहीं चाहा था और आँखें खुलते ही उसकी दृष्टि न जाने किस रहस्यपूर्ण टेलिपेथिक के तांत्रिक प्रेरणा से या इत्तफाक से केवल एक विशेष व्यक्ति पर पड़ी जो हल्के हरे रंग के कपड़े की सूट पहने था और पास ही एक सोफा पर बैठा हुआ ध्यानावस्थित होकर उसका गाना सुन रहा था। उस पर दृष्टि पड़ते ही अपर्णा उचक उठी। एक अनोखी घबराहट, एक विचित्र भौतिक आतंक उसके सिर से लेकर पाँव तक हर-हरा उठा। पर अपनी उस घबराहट का कोई कारण वह स्वयं कुछ क्षण तक नहीं जान पाई। प्रथम क्षण में अपर्णा को ऐसा लगा जैसे उसके बचपन के दुःस्वप्न-लोक का कोई भूत उसके सामने आ बैठा हो।

पर बाद में जब उसने अपनी स्मृति को कुरेदा तो उसे याद आया कि उस फैशनेबुल व्यक्ति की आकृति बहुत कुछ उस व्यक्ति से मिलती-जुलती-सी है जिसे प्रायः चार वर्ष पहले उसने डाकुओं के सरदार के रूप में जंगल में देखा था। उसके अन्तर्मन को स्वयं इस बात पर विश्वास नहीं होता था और उसे विश्वास करने को जी चाहता था कि उसकी आँखें धोखा खा रही हैं। तथापि इस बात से उसका भय तनिक भी दूर नहीं हो रहा था। वह भीत दृष्टि से उस व्यक्ति की ओर देखती रह गई। गाते-गाते उसकी आवाज़ लड़खड़ाने लगी। उस्ताद ने शंकित होकर तबला बजाना रोक दिया। जनता बड़े ज़ोरों से तालियाँ पीटने लगी।

गायिका की भीतरी भावना और बाहरी आवाज़ में सहसा जो विचित्र परिवर्तन आ गया था उससे अधिकांश श्रोतागण एकदम अपरिचित ही रहे और अपर्णा को मैडेल पर मैडेल प्रदान किये जाने की घोषणाएँ होने लगीं। कोट-पैंटधारी सज्जन संभवतः अपर्णा के मन का भाव ताड़ गये थे और इसी कारण चुपचाप उठकर बाहर चले गये। अपर्णा भी काँपते

हुए पाँवों से किसी प्रकार उठकर लड़खड़ाती हुई मंच पर से चली गई।

उस रात अपर्णा ने नींद में डाकुओं के सरदार को कई बार देखा। कभी उसे देखकर वह भयभीत हुई कभी उसका कौतूहल जगा और कभी अत्यंत आत्मीय रूप में वह उसके सामने आया।

तब से अपर्णा को ऐसा अनुभव होने लगा जैसे उस सरदार की छाया उसके पीछे लगी है और वह चाहे कहीं भागे वह छाया उसके ऊपर सर्वदा सब समय मँडराती रहेगी।

उस घटना के चंद महीनों बाद अपर्णा की माँ की मृत्यु हो गई और वह जीवन में अकेली रह गई।

कई वर्ष बीत गये। एकाकी जीवन के नाना उल्टे-सीधे चक्करों के बाद एक दिन बम्बई की एक सिनेमा-कम्पनी से कैसे उसका सम्बन्ध जुड़ गया यह उसकी अंतरात्मा जैसे स्वयं नहीं जानती थी या जानना नहीं चाहती थी।

पहली बार जिस फिल्म में उसने काम किया वह किन्हीं कारणों से पूर्णतः असफल रही। कम्पनी ने केवल एक ही फिल्म के लिये उससे बात तय की थी।

दूसरी फिल्म के लिये उससे आग्रह नहीं किया गया और न किसी दूसरी कम्पनी ने ही उसे बुलाया। फिल्म-क्षेत्र में पहली ही बार में अपनी असफलता को वह अपने जीवन की असफलता समझ रही थी और जीवन के प्रति विराग की चरमसीमा पर पहुँचने ही जा रही थी कि एक दूसरी कम्पनी ने जो अभी नयी खुली थी उसे बड़े आग्रह और सम्मान के साथ बुला लिया।

मैनेजर ने उसे फिल्म के सिनेरियो तथा डायलॉग की एक कापी दी। ताकि वह अपना पार्ट समझ ले और याद कर ले। जिस दिन पहली बार रिहर्सल होने वाला था उस दिन अपर्णा पूरी तैयारी करके गई थी। पिछले फिल्म की असफलता से सचेत होकर वह इस नये फिल्म में अपने

अभिनय में किसी प्रकार की कमी नहीं आने देना चाहती थी। वह अभिनय की तैयारी में इस कदर व्यस्त रही थी कि नायक का पार्ट खेलने वाला ऐक्टर कौन है यह जानने की उत्सुकता ही उसे नहीं हुई थी। उसने केवल इतना ही सुना था कि एक नया आदमी नायक का अभिनय करेगा।

जब नायक से उसका परिचय कराया गया तो उसे देखकर वह बहुत प्रसन्न हुई। वह एक बहुत ही सुन्दर, हँसमुख, शांत स्वभाव और फैशनेबुल भद्र पुरुष था। उसकी उम्र प्रायः ३०-३५ वर्ष की लगती थी। अपर्णा को उसे देखकर प्रसन्नता तो बहुत हुई पर न जाने क्यों उस व्यक्ति की मीठी मुस्कान एक अजीब-सी चुभन उसके मन के भीतर पैदा कर रही थी।

रिहर्सल शुरू हुआ। प्रारंभिक सीन में यह दिखाया गया था कि नायिका रात में अपने कमरे में आराम की नींद सोई रहती है और दूसरे दिन सुबह जब उसकी आँखे खुलती हैं तो वह अपने को एक सुंदर, सुसज्जित किंतु अपरिचित मकान के कमरे में सोई हुई पाती है। वह लेटे ही लेटे एक बार आँखें मलकर कमरे के चारों ओर बड़े गौर से देखती है और फिर हड़बड़ा कर उठ बैठती है। वह उस सूने कमरे में चीख मारकर कहती है कि मैं कहाँ हूँ, इतने में भीतर नायक प्रवेश करता है और कहता है, तुम हूरों और परियों की दुनिया में आई हो जहाँ जीवन चिर राग-रंगमय है। यहाँ बीती हुई बात के लिये चिंता या पश्चात्ताप का कोई अस्तित्व नहीं है न आनेवाली बात की झूठी रंगीन आशा का। यहाँ प्रतिपल वर्त्तमान के ही विशुद्ध आनंदमय रंग का समा बँधा रहता है। अपर्णा को यह सब याद था।

पर उसके आश्चर्य की सीमा न रही जब रिहर्सल में नायक का पार्ट खेलने वाले अभिनेता ने उसके प्रश्न के उत्तर में कुछ दूसरी ही बात कहनी शुरू की। अपर्णा ने जब अभिनय में चीख मारकर कहा, मैं कहा हूँ तब नायक अत्यंत गंभीर मुद्रा बनाकर गम्भीर ही वाणी में बोला, तुम डाकुओं के बीच में आई हो, तुम्हारे पिता ने जिन गरीब किसानों के साथ अमानुषिक अत्याचार किये थे जिनकी बहू-बेटियों की इज्जत-आबरू

मिट्टी में मिलाकर उनका सब कुछ लूटकर उन्हें गाँव से निकल जाने को बाध्य किया था। वे जीवन-निर्वाह का दूसरा कोई उपाय न देखकर डाकू बनने को विवश हुए हैं। वे ही जमींदार से बदला चुकाने के लिये तुम्हें भगा लाये थे। आज भी वे ही तुम्हें यहाँ लाये हैं। उनके चंगुल से तुम छूट नहीं सकती। यदि तुम अपने पापी पिता के अत्याचारों का प्रायश्चित करना चाहती हो तो इसी डाकुओं के दल में मिल जाओ। यह ग़रीबों को लूटनेवाला निस्सहायों का खून चूसनेवाला दल नहीं है बल्कि ग़रीबों की सेवा ही इसका एकमात्र ध्येय है। यह दल तुम्हारे साथ किसी प्रकार की ज़्यादती नहीं करना चाहता बल्कि तुम्हें अपने बीच में अत्यंत गौरव का स्थान देना चाहता है बशर्ते कि तुम उनके साथ सहयोग देने को राजी हो जाओ।"

अपर्णा विभ्रान्त दृष्टि से नायक की ओर देखती रह गई। नायक ने जब अपना कथन समाप्त किया तो वह स्टूडियो के चारों ओर अत्यंत भीत और चकित भाव से देखने लगी जैसे किसी घोर संकट के बीच में किसी सुरक्षित स्थान में आश्रय खोजने की चिंता में हो। सहसा उसकी दृष्टि पूर्व की ओर कोने पर खड़े एक व्यक्ति पर पड़ी जो काले रंग की शेरवानी और सफेद रंग का चूड़ीदार पाजामा पहने था। उसकी ओर देखते ही आँखें चुम्बाकर्षण की तरह स्तब्ध रह गईं। उसके बाद वह चक्कर खाकर नीचे गिर पड़ी।

जब मूर्च्छा भंग हुई तो अपर्णा ने वास्तव में अपने को एक नये स्थान में पाया। स्पष्ट ही वह स्थान बम्बई शहर के बाहर था। एक नौकर ने आकर शीशे के एक गिलास में गरमागरम दूध उसके पलंग के पासवाली एक छोटी-सी मेज पर रख दिया। पर अपर्णा ने उसे छुआ तक नहीं और केवल प्रश्न किया, "मैं कहाँ हूँ।" प्रश्न करते ही तत्काल उसे याद आया कि यही प्रश्न उसने स्टूडियो के रिहर्सल में भी किया था जिसका उसे आतंकजनक उत्तर सुनने को मिला था। याद आते ही वह सँभलकर बैठ गई जैसे किसी आसन्न खतरे से अपने को बचाना चाहती हो। कुछ

देर बाद काले रंग की शेरवानी और सफेद रंग का चूड़ीदार पाजामा पहने वही व्यक्ति धीरे से उसके सामने आकर खड़ा हो गया जिसे स्टूडियो में देखकर वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ी थी ।

अपर्णा ने भयभीत होकर प्रायः फुसफुसाते हुए कहा, "तुम, तुम यहाँ कहाँ, तुम क्या वही सरदार हो ?"

"हाँ अपर्णा मैं वही सरदार हूँ," उस व्यक्ति ने धीरे से अत्यन्त शांत भाव से कहा ।

उसके मुँह से अपना नाम सुनकर अपर्णा के शरीर में घृणा के काँटे खड़े हो गये । उसने कहा, "तुम डाकुओं के सरदार मेरे पीछे क्यों पड़े हो, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा ?"

"मैं तुम्हारा कोई अनिष्ट करने के इरादे से तुम्हारे पीछे नहीं पड़ा हूँ अपर्णा ! मेरी इस बात पर तुम विश्वास कर लो । बल्कि मेरे ही कारण तुम बहुत-से अनिष्टों से बची हुई हो, नहीं तो आज तक तुम्हारी जो दुर्गति हो गई होती उसकी कल्पना भी नहीं कर सकती हो। मेरी बात तुम धैर्य से सुनती जाओ उसके बाद तुम जैसा चाहोगी वैसा ही किया जायगा । मैं डाकुओं का सरदार जरूर हूँ, पर मेरे दल ने कभी गरीब और असहायों पर अत्याचार नहीं किया है, जैसा कि तुमने स्टूडियो में सुना है । बल्कि मेरे दल ने बराबर नाना रूप में कभी व्यक्तिगत और कभी सामाजिक तौर पर अत्याचार-पीड़ितों की सहायता की है । मैं यह मानता हूँ कि मैं डाकू रहा हूँ; यह कलंक समाज की किसी भी सेवा से धुल नहीं सकता । समाज अब मुझे खुल्लमखुल्ला अपने भीतर स्वीकार नहीं करेगा। मैं जिस किसी क्षण अपने को प्रकट कर दूँ उसी क्षण समाज मुझे पुलिस के हवाले करने में सहायक सिद्ध होगा ।

"इतने वर्षों तक मैं नाना प्रकार के पेशों से अपने पिछले व्यक्तित्व को छिपाता फिरता हूँ पर अब मुझे इस प्रकार की आँख-मिचौनी से घृणा हो गई है विशेषकर तब जब मैं देखता हूँ कि तुम्हारे साथ अपकार के बदले उपकार करने पर भी तुम्हारी नजरों में मैं इतना नीचे गिरा हुआ

हूँ। तुम्हारी घृणा के बाद अब मेरे लिये किसी बात की कोई सार्थकता नहीं रह गई है क्योंकि…पर यह बात जाने दो। किन्तु अपना अस्तित्व मिटाने से पहले मैं तुम पर इस बात के लिये जोर डालना अपना अंतिम, अपने जीवन का सबसे बड़ा कर्तव्य समझता हूँ कि तुम्हें अपने पिता के पापों का प्रायश्चित अवश्य करना होगा। तुमसे इतनी बात करने के उद्देश्य से ही मैंने फिल्म का सारा जाल रचा था। तुम्हें शायद इस बात का पूरा-पूरा पता न होगा कि तुम्हारे पिता ने अपने जीवन में क्या-क्या दुष्कर्म किये।" यहाँ पर सरदार ने दो बार चुटकी बजाई और एक नवजवान लड़की ने जो शिक्षिता लगती थी भीतर प्रवेश किया। सरदार अपर्णा की ओर देखकर बोला, "इसे देख रही हो, इसकी माँ का सर्वस्व छीनकर तुम्हारे पिता ने दोनों माँ-बेटियों को दर-दर भीख माँगने के लिये छोड़ दिया था। माँ मर गई है और इस लड़की की रक्षा, पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध मेरे ही दल ने किया है। ऐसे बीसियों उदाहरणों में से यह केवल दो हैं। इसलिये कहता हूँ कि तुम्हें अपने पिता के पापों का प्रायश्चित करना होगा। उस पिता के पापों का, जो डाकुओं के सरदार का भी सरदार था संगीत-सम्मेलन में और फिल्म-कंपनियों में जीवन बरबाद करते हुए तुम्हें शर्म आनी चाहिये जब कि तुम्हारे पिता द्वारा अनाथ किये गये व्यक्ति की तरह हजारों-लाखों अनाथ देश के कोने-कोने में दम तोड़ रहे हैं और सहस्रों प्रकार के अन्यायों और अत्याचारों से दबे पड़े हैं। मेरी कड़क बातों के लिये मुझे क्षमा करना। मैं जाता हूँ। सदा के लिये। आज से कभी तुम मेरी छाया को अपने पीछे नहीं पाओगी। पर जाने के पहले इन दो व्यक्तियों को तुम्हारे पास छोड़े जाता हूँ। इन दोनों ने मेरे डाकुओं के दल की कार्रवाइयों में भाग नहीं लिया है। इनका क्षेत्र दूसरा ही रहा है। खुले आम सामाजिक सेवा करना ही इनके जीवन का ध्येय रहा है। ये दोनों विशुद्ध चरित्र और आत्मत्यागी हैं। इनके पथ का अनुसरण करना ही तुम्हारे लिये कल्याणकारी होगा। और यदि फिल्म के जीवन से ही तुम्हें प्रेम हो तो एक फिल्म-कम्पना छोड़े जा रहा हूँ उसमें तुम काम

करो और केवल ऐसे फिल्म का प्रदर्शन करो जिसका एकमात्र लक्ष्य दलितों को सताने वालों का भंडाफोड़ करने और क्षीण प्राणों में नया जोश भरने का हो। मैं आशा करता हूँ कि तुम मेरा यह अंतिम अनुरोध नहीं टालोगी। अच्छा नमस्कार !" यह कहते ही सरदार जादू के मन्त्र की तरह पल में न जाने कहाँ गायब हो गया। एक्टर क्षणिक भ्रांति के बाद वायुवेग से दरवाजे की ओर दौड़ा, सम्भवत: सरदार को रोकने के लिये पर सरदार वहाँ कहाँ ?

अपर्णा के कानों के दोनों ओर किसी की मर्मभेदी वाणी निरंतर बड़ी तीव्रता से गूँज रही थी। नौजवान लड़की ने बड़े स्नेहपूर्ण स्वर में कहा, "बहन दूध पी लो, तुम थक गई हो।"

पर अपर्णा के कानों तक उसकी बात पहुँच नहीं पाई। 'तुम्हें अपने बाप के पापों का प्रायश्चित करना होगा।' निरंतर यही एक आवाज़ उसे सुनाई दे रही थी। वह मन ही मन में कह रही थी, ठीक है, मैं प्रायश्चित करूँगी, अवश्य करूँगी। मैंने अपने चरम उपकारी को परम अपकारी माना है।

दूसरे दिन संवाद-पत्रों में यह खबर छपी कि अपर्णा नाम की एक अभिनेत्री ने गले में फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली है।

रेल की रात

गाड़ी आने के समय से बहुत पहले ही महेन्द्र स्टेशन पर जा पहुँचा था। उसे गाड़ी के पहुँचने का ठीक समय मालूम न हो, यह बात नहीं कही जा सकती, पर जिस छोटे शहर में वह आया हुआ था वहाँ से जल्दी भागने के लिये वह ऐसा उत्सुक हो उठा था कि जान-बूझकर भी अज्ञात मन से शायद किसी अबोध बालक की तरह वह समझा था कि उसके जल्दी स्टेशन पर पहुँचने से संभवतः गाड़ी भी नियत समय से पहले ही आ जायगी।

होल्ड आल में बँधे हुए बिस्तरे और चमड़े के एक पुराने सूटकेस को प्लेटफ़ार्म के एक कोने पर रखवाकर वह चिंतित तथा अस्थिर-सा अन्यमनस्क भाव से टहलते हुए टिकट-घर की खिड़की के खुलने का इंतजार करने लगा।

महेन्द्र की आयु बत्तीस-तैंतीस वर्ष के लगभग होगी। उसके कद की ऊँचाई साढ़े पाँच फीट से कम नहीं मालूम होती थी। उसके शरीर का गठन देखने से उसे दुबला तो नहीं कहा जा सकता, तथापि मोटा वह नाम का भी न था। रंग उसका गेहुँआ था, कपोल कुछ चौड़ा, भौंहें कुछ मोटी किंतु तनी हुईं, आँखें छोटी पर लंबी, काली मूँछें घनी पर पतली और दोनों सिरों पर कुछ ऊपर को उठी थीं। वह खद्दर का एक लंबा कुरता और खद्दर की धोती पहने था। सर पर टोपी नहीं थी। पाँवों में घड़ियाल के चमड़े के बने हुए चप्पल थे। उसके व्यक्तित्व में आकर्षण अवश्य था, पर वह आकर्षण सब समय सब व्यक्तियों की दृष्टि को अपनी ओर नहीं खींचता था।

सूरज बहुत पहले डूब चुका था और शुक्लपक्ष का अपूर्ण गोलाकार

चन्द्रमा अपने किरण-जाल से दिग-दिगंत को स्निग्ध आलोक-छटा से विभासित करने लगा था। स्टेशन में अधिक भीड़ न थी। प्लेटफार्म पर टहलते-टहलते पूर्व की ओर चार कदम निकल जाने पर ऐसा मालूम होने लगता था कि चाँदनी दीर्घ-विस्तृत समतल भूमि पर अलस क्लांति की तरह पड़ी हुई है। झिल्ली-झनकार का एकांतिक मर्मर स्वर इस अलसता की वेदना को निर्मम भाव से जगा रहा था जिससे महेन्द्र के हृदय की सुप्त व्याकुलता तिलमिला उठती थी।

सिगनल डाउन हो गया था। टिकट-घर खुल गया था। थर्ड क्लास का टिकट खरीदकर महेन्द्र गाड़ी का इंतजार करने लगा। थोड़ी देर में दूर ही सर्चलाइट के प्रखर प्रकाश से तिमिर विदारण करती हुई गाड़ी दिखाई दी और भक्भक् करती हुई स्टेशन पर आ खड़ी हुई।

सामने के कम्पार्टमेंट में केवल दो व्यक्ति बैठे थे और वे भी उतरने की तैयारी कर रहे थे। महेन्द्र एक हाथ में बिस्तर की गठरी और दूसरे हाथ से सूटकेस पकड़कर उसी में जा घुसा। जो दो व्यक्ति कम्पार्टमेंट में थे उनके उतरते ही एक चश्माधारी सज्जन ने दो महिलाओं के साथ भीतर प्रवेश किया। कुली ने आकर नवागंतुक महाशय का सामान भीतर रख दिया और मजूरी के संबंध में काफ़ी हुज्जत करने के बाद पैसे लेकर चला गया। चश्माधारी सज्जन महिलाओं के साथ महेन्द्र के सामने वाले बेंच पर बड़े आराम से बैठ गये। मालूम होता था कि वह बड़ी हड़बड़ी के साथ गाड़ी आने के कुछ ही समय पहले स्टेशन पहुँचे थे और घबराहट में थे कि महिलाओं को साथ लेकर यदि किसी कम्पार्टमेंट में जगह न मिली तो क्या हाल होगा। वह अभी तक हाँफ रहे थे, जिससे उनकी अब तक की परेशानी स्पष्ट व्यक्त होती थी। अब जब आराम से बैठने को खाली जगह मिल गई तो एक लंबी साँस लेकर चश्मा उतारकर रूमाल से मुँह का पसीना पोंछने लगे। पसीना पोंछते-पोंछते महेन्द्र की ओर देखकर उन्होंने प्रश्न किया, "शिकोहाबाद कै बजे गाड़ी पहुँचेगी, आप बता सकते हैं?"

महेन्द्र ने उत्तर दिया, "जहाँ तक मेरा ख्याल है, बारह बजे के करीब पहुँचेगी।"

महेन्द्र कनखियों से महिलाओं की ओर देख रहा था। महिलाएँ उसके एकदम सामने बैठी थीं और यदि वह दृष्टि सीधी करके स्वाभाविक रूप से उन्हें देखता रहता तो भी शायद न तो चश्माधारी सज्जन को और न महिलाओं को कोई आपत्ति होती, पर उसे अपनी स्वाभाविक संकोचशीलता के कारण उनकी ओर स्थिर दृष्टि से देखने का साहस नहीं होता था। दोनों महिलाएँ बेपर्दा बैठी थीं। उनमें एक की अवस्था प्रायः पैंतीस वर्ष की होगी, वह एक सफेद चादर ओढे थी; दूसरी बाईस-तेईस वर्ष की जान पड़ती थी। वह एक गुलाबी रंग की सुंदर, सुरुचिपूर्ण साड़ी पहने थी। दोनों यथेष्ट सभ्य और सुशील जान पड़ती थीं। ज्येष्ठा को देखने से ऐसा अनुमान लगाया जा सकता था कि किसी समय वह सुंदरी रही होगी, पर अब अस्वस्थता के कारण उसका मुखमंडल बिलकुल निस्तेज जान पड़ता था। कनिष्ठा यद्यपि सौंदर्य-कला की दृष्टि से सुंदरी नहीं थी तथापि उसके मुख की व्यंजना में एक ऐसी सरस मधुरिमा वर्त्तमान थी जो बरबस आँखों को आकर्षित कर लेती थी।

आज कई कारणों से महेन्द्र का जी दिन भर अच्छा नहीं रहा। गाड़ी में बैठने तक वह चिंतित, अन्यमनस्क तथा उदास था। पर गाड़ी में बैठते ही शिष्ट, सुशील तथा सुंदरी महिलाओं के साहचर्य से उसके खिन्न मन में एक सुखद सरसता छा गई। यद्यपि वह संकोच के कारण कुछ कम घबराया हुआ न था, तथापि चश्माधारी सज्जन की भोली आकृति तथा सरल भाव-भंगिमाओं से और महिलाओं की शालीनता से उसे इस बात पर धीरे-धीरे विश्वास होने लगा था कि उनके बीच किसी प्रकार का संकोच अनावश्यक ही नहीं बल्कि अशोभन भी है।

चश्माधारी सज्जन ने चश्मा उतारकर एक रूमाल से उसे पोंछते हुए पूछा, "आप क्या शिकोहाबाद जा रहे हैं?"

"जी नहीं, मैं दिल्ली जा रहा हूँ। आप क्या शिकोहाबाद में ही रहते हैं?"

"जी नहीं मुझे टूंडला जाना है। मैं वहाँ कोर्ट में प्रेक्टिस करता हूँ। इधर कुछ दिनों के लिये घर आया हुआ था। अब अपनी 'वाइफ' को और 'सिस्टर' को लेकर वापस जा रहा हूँ। 'सिस्टर' की तबीयत ठीक नहीं रहती, इसलिये उसे हवा-बदली के लिये ले जा रहा हूँ।"

एक साधारण-से प्रश्न के उत्तर में इतनी बातों से परिचित होने पर महेन्द्र को नव परिचित सज्जन की बेतकल्लुफी पर आश्चर्य हुआ और वह मन ही मन मुस्कराने लगा। उसने अनुमान लगाया कि ज्येष्ठा महिला 'सिस्टर' होगी और कनिष्ठा 'वाइफ'।

थोड़ी देर में गाड़ी चलने लगी। कोई दूसरा यात्री उस डिब्बे में न आया। चश्माधारी महाशय गाड़ी चलने के कुछ ही देर बाद ऊँघने लगे। वे रह न सके और बँधे हुए बिस्तर को तकिया बनाकर एक दूसरे बैंच पर लेट गये और लेटते ही खर्राटे लेने लगे। न जाने क्यों, महेन्द्र के मन में यह विश्वास जम गया कि इन नव परिचित महाशय का जीवन बड़ा सुखी है। उनकी बेतकल्लुफी तथा उनके मुख का आत्मसंतोषपूर्ण भाव देखकर उसके मन में यह विश्वास जमने लगा था और जब उसने उन्हें निश्चिंत सोते हुए तथा खर्राटे भरते देखा तो उसकी यह धारणा दृढ़ हो गई।

ज्येष्ठा महिला ने भी थोड़ी देर से ऊँघना शुरू कर दिया। वह ऊँघती जाती थी और बीच-बीच में जब जबर्दस्त हिचकोला खाती थी तो जाग पड़ती थी। केवल कनिष्ठा महिला पूर्णतः सजग थी। वह कभी खिड़की से बाहर झाँककर चाँदनी के उज्ज्वल आलोक में शायद 'पल-पल परिवर्तित' प्राकृतिक दृश्यों का आनंद लेती थी, कभी ऊँघने वाली महिला की ओर देखती थी, कभी खर्राटे भरने वाले महाशय शायद अपने पति का एक बार सरसरी निगाह से देख लेती थी और कभी महेन्द्र को स्निग्ध किंतु विस्मय की उत्सुकता से पूर्ण आँखों से देखने लगती थी। उन आँखों की स्थिर दृष्टि जब महेन्द्र पर आकर पड़ती थी तो उसे ऐसा मालूम होने लगता कि वह मोहाविष्ट हुआ जा रहा है और उसकी सारी आत्मा,

यहाँ तक कि सारा शरीर भी अपना रूप बदल रहा है और वह किसी अव्यक्त तथा अतीन्द्रिय मायावी स्पर्श से कुछ का कुछ हुआ जा रहा है। वह उस स्थिर दृष्टि का तेज सहन न कर सकने के कारण आँखें फिरा लेता था।

गड़ी टटर-टट्ट-टटर-टट्ट शब्द से चली जा रही थी। जाग्रत महिला की गुलाबी साड़ी का अंचल हवा के झोंके से सर से नीचे खिसककर उसके लहराते हुए घनकुंचित काले केशों की बहार दिखा रहा था। गुलाबी साड़ी भी हवा के जोर से फर-फर फहरा रही थी। महेन्द्र पूर्ण जाग्रत अवस्था में स्वप्न देखने लगा। उसे यह भ्रम होने लगा कि यह महिला, जो इस समय के पहले उसके लिये एकदम अज्ञात थी और निश्चय ही सदा अज्ञात रहेगी, न जाने किस चिदानंदमय लोक से अकस्मात् आविर्भूत होकर उसके पास आ बैठी है और गुलाबी रंग की पताका फहराकर विश्व-विजय को निकली है और वह उसका सारथी बनकर उस अनंतगामी रेल रूपी रथ पर चला जा रहा है। सारा विश्व, समस्त मानवी तथा मानसी दृष्टि उसके लिये उस कम्पार्टमेंट के भीतर समा गई थी, जिसमें ऊँघने वाली महिला तथा सोये हुए सज्जन का कोई अस्तित्व नहीं था, और उसके बाहर क्षण-क्षण में परिवर्तित होने वाले अस्थिर माया जगत् का चिर चंचल रूप एकदम असत्य तथा सत्ताहीन-सा लगता था।

महेन्द्र सोचने लगा कि उसने जीवन में कितनी ही स्त्रियों को विभिन्न रूपों तथा विचित्र परिस्थितियों में देखा है, पर आज का यह बिल्कुल साधारण-सा अनुभव उसे क्यों ऐसा अपूर्व तथा अनुपम लग रहा है। वह सोच ही रहा था कि फिर उस विश्व-विजयिनी ने अपनी सुंदर, विस्मित आँखों की रहस्यमयी उत्सुकता से भरी स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखा। वह मन ही मन उसे संबोधित करते हुए कहने लगा, चिर अज्ञाता, चिर अपरिचिता देवी! तुम मुझसे क्या चाहती हो। तुम्हारी इस मर्म-भेदिनी दृष्टि का क्या अर्थ है? दैवयोग से महाकाल के इस नगण्यतम क्षण में,

जिसकी सत्ता महासागर में एक क्षुद्रतम बुदबुदे के बराबर भी नहीं है, हम दोनों का आकस्मिक मिलन घटित हुआ है, और महासागर में बुदबुदे की तरह ही यह क्षण सदा के लिये विलीन हो जायगा। तथापि इतने ही अर्से में क्या तुम हम दोनों के जन्मांतर के संबंध से परिचित हो गईं ? अथवा यह सब कुछ नहीं है। तुम्हारी आँखों की उत्सुकता का कोई मूल्य नहीं है, मेरी विह्वल भावुकता का कोई महत्व नहीं है। महत्वपूर्ण जो कुछ है वह है तुम्हारे पास लेटे हुए व्यक्ति का खर्राटे भरना।

शिकोहाबाद पहुँचने तक चश्माधारी सज्जन की नींद न टूटी और ज्येष्ठा महिला ऊँघती रही। पर महेन्द्र की विश्व-विजयिनी की आँखों में एक क्षण के लिये भी निद्रा-रसावेश का लेश नहीं दिखाई दिया। वह बीच-बीच में अपनी मर्म-भेदिनी दृष्टि की प्रखर उत्सुकता से उसके हृदय को अकारण निर्मम रूप से विद्ध करती चली जाती थी। फलस्वरूप महेन्द्र की गुलाबी मोहकता भी शिकोहाबाद पहुँचने तक अखंड बनी रही।

शिकोहाबाद पहुँचने पर विश्व-विजयिनी ने चश्माधारी सज्जन के किंचित् स्थूल शरीर को हाथ से हिलाते हुए जगाया। ऊँघती हुई महिला भी सँभलकर बैठ गई। कुलियों से सामान उतरवाकर चारों व्यक्ति उतर पड़े। दिल्ली वाली गाड़ी जिस प्लेटफार्म पर लगनेवाली थी वहाँ को जाने के लिये पुल पार करना पड़ा। पुल पार करके वे लोग जिस प्लेटफार्म पर आये वहाँ कहीं एक भी बत्ती जली हुई नहीं थी। पर चूँकि सर्वत्र निर्मल चाँदनी छिटक रही थी, इसलिये बत्ती की कोई आवश्यकता न जान पड़ी। गाड़ी के आने में अभी डेढ़ घंटे की देर थी। चश्माधारी महाशय एक बेंच पर बिस्तर फैलाकर लेट गये। दोनों महिलाएँ भी नीचे रखे हुए सामान के ऊपर बैठ गईं।

चश्माधारी सज्जन ने महेन्द्र से कहा, "आप भी किसी बेंच पर बिस्तर बिछाकर लेट जाइये।"

पर कोई बेंच खाली नहीं थी और न महेन्द्र सोने के लिये ही उत्सुक था। आज की रेलवे यात्रा की चन्द्रोज्ज्वल रात्रि उसे चिरजाग्रत तथा

चिरजीवित स्वप्नलोक में विचरण का अवसर दे रही थी। वह प्लेटफ़ार्म पर टहलता हुआ अपने अन्तर्मन में नवउद्घाटित जीवन-वैचित्र्य की चहल-पहल देखकर विस्मित हो रहा था। उसे ऐसा अनुभव हो रहा था कि वह जीवन की मधुरिमा से आज प्रथम बार परिचित हो रहा है। रेलवे लाइन के उस पार दिगन्त-विस्तृत ज्योत्स्ना-राशि अपने आवेश में स्वयं पुलकित हो रही थी और सामने काफ़ी दूरी पर दो रक्तरंजित गोलाकार प्रकाश-चिह्न आकाश-दीप की तरह मानो आनन्दोज्ज्वल रंगीन जीवन का मार्ग उसके लिये इंगित कर रहे थे। रेलगाड़ी में होकर वह अनेक बार आया था और गया था और कितनी ही बार उसे रात के समय स्टेशनों पर गाड़ी के इन्तजार में ठहरना पड़ा था, पर आज की ऐन्द्रजालिक उल्लास-पूर्ण अनुभूति उसके लिये एकदम नयी थी। इस बार इन्द्रजाल के उद्घाटन का श्रेय जिसको था वह मायाविनी इस समय टीन की छत के नीचे की छाया में बैठी हुई थी और अंधकार में उसकी आँखों के जादू का चलना बंद हो गया था। पर वहाँ पर केवलमात्र उसका अस्तित्व ही महेन्द्र की आत्मा में मायालोक की मोहकता का सृजन करने के लिये पर्याप्त था।

वह टहलते-टहलते न मालूम किन निरुद्देश्य स्वप्नों की माया के फेर में पड़ा हुआ था कि अचानक चश्माधरी महाशय ने बेंच पर से पुकारते हुए कहा, "अरे जनाब, कब तक टहलियेगा। अगर लेटना नहीं चाहते तो यहाँ पर बैठ तो जाइये। नींद तो अब आवेगी नहीं। इसलिये गाड़ी के आने तक गपशप ही रहे।" महाशय जी पहले ही काफी सो चुके थे, इसलिये अब नींद नहीं आती थी। महेन्द्र मुस्कराता हुआ उनके पास अपने सूटकेस के ऊपर बैठ गया।

महाशय जी ने कहा, "आप दिल्ली में कहीं मुलाजिम हैं ?"

"जी नहीं।"

"तब आप क्या करते हैं, आप खद्दर पहने हैं, क्या आप राजनीतिक हैं ?"

"पहले था, अब नहीं के बराबर हूँ।"

"वह कैसे ?"

इस प्रश्न के उत्तर में महेन्द्र ने परम क्लान्ति का भाव दिखाते हुए कहा, "अरे साहब, सुन के क्या कीजियेगा। व्यर्थ में आपके संस्कारों को आघात पहुँचेगा। इस चर्चा को हटाइये और किसी अच्छे विषय की चर्चा चलाइये।"

स्वभावतः चश्माधारी का कौतूहल बढ़ा। उन्होंने आग्रह के साथ कहा, "फिर भी जरा सुनें तो सही। आखिर कौन-सी ऐसी बात हो गई।"

महेन्द्र की सुप्त स्मृतियाँ तिलमिला उठी थीं। कनखियों से उसने देखा, प्रायः अंधकार में बैठी हुई मायाविनी महिला का ध्यान उसी की ओर था। पल में उसके मानसिक चक्षुओं के आगे उसके सारे विगत जीवन की व्यर्थता के दुःखद संस्मरणों की झाँकी चित्रपट पर से क्रम से परिवर्तित होने वाले चित्रों की तरह भासमान होने लगी। भाव के आवेश में आकर उसने कहा, "अच्छा, तो सुनिये। ग्यारह वर्ष से लेकर तीस वर्ष की अवस्था तक गाँधी के सिद्धान्तों के पीछे पागल होकर, भूखों रहकर, पग-पग ठोकरें खाकर, समाज तथा परिवार की फटकारें सहकर, जीवन के सब सुखों को अपने ध्येय के लिये तिलांजलि देकर, राष्ट्रीय आदर्श को ब्रह्मतत्व से भी अधिक महत्व देकर सच्ची लगन से अपनी सारी आत्मा को निमज्जित करके देश का काम किया। तीन बार काफी अवधि के लिये जेल में सड़ता रहा, बार-बार पुलिस के डंडे सर पर पड़ते रहे। जमीन-जायदाद कुर्क हो गई, माता-पिता अपनी कपूत संतान के कारण तबाह होकर मानसिक और शारीरिक पीड़ा की पराकाष्ठा भोगकर चल बसे, पत्नी तड़प-तड़पकर अपने भाग्य को कोसती हुई मर गई। फिर भी मैं राष्ट्र के कल्याण के परम ध्येय को स्त्री, परिवार, आत्मा और परमात्मा से बहुत ऊँचा मानता हुआ सच्ची लगन से काम करता रहा। जब अंतिम बार जेलखाने में लंबी मियाद पूरी करने के बाद थका-माँदा मन तथा शरीर से क्लिष्ट और क्लान्त होकर मैं बाहर आया तब

एक-एक करके उन स्नेहीजनों की स्मृतियाँ मेरे मन में उदित हो-होकर व्यथित करने लगीं, जिनकी मैं सदा अवज्ञा करता आया था। अपनी पत्नी से मैंने जीवन में शायद दो दिन भी घनिष्ठता से बातें न की होंगी। जब मैं बाहर रहता था तो उसके पत्र बराबर मेरे पास आते रहते थे और मैं सरसरी दृष्टि से पढ़कर अवज्ञा से फाड़कर फेंक देता था। एक या दो बार से अधिक मैंने उसके पत्रों का उत्तर नहीं दिया और दो बार जो उत्तर दिया था वह भी चार पंक्तियों में बिल्कुल रूखे-सूखे ढंग से। अब जब मैं अपने को सारे संसार में अकेला, स्नेह तथा संवेदना से वंचित असहाय तथा निरुपाय अनुभव करने लगा तो उसकी भोली-भाली, सकरुण, स्नेह की वेदना से भरी, सहज सलोनी मूर्ति प्रति पल मेरी आँखों के आगे भासित होने लगी। उसके पत्रों में सरल शब्दों में वर्णित कातर व्याकुलता के हाहाकार की पुकार मानो मेरी स्मृति के अतुल गह्वर में दीर्घ सुप्ति की घोर जड़ता के बाद अकस्मात् जागरित होकर मेरे हृदय पर जलते हुए अंगारों के गोलों से आघात करने लगी। अपने जीवन में मैं कभी किसी बात पर नहीं रोया था। माता-पिता तथा पत्नी, किसी की मृत्यु पर आँसू की एक बूँद मेरी आँखों से न निकली थी। पर अब रह-रहकर उन लोगों की याद में बिलख-बिलखकर मैं बार-बार रो पड़ता। मेरी स्नेहशीला पति-परायणा पत्नी की करुण पुण्यच्छवि उज्ज्वल नक्षत्र की तरह मेरी आँखों के आगे स्पष्ट भासमान होने लगी। रह-रहकर मेरा जी विकल हो उठता था और मुझे ऐसा प्रतीत होने लगता जैसे मेरे हृदय में किसी के निष्कलंक सुकुमार प्राणों की पैशाचिक हत्या का अपराध पाषाण भार की तरह पड़ा हो। बहुत दिनों तक इस नृशंस अपराध की भयंकर अनुभूति का भूत मेरी आत्मा को अत्यन्त निष्ठुरता से दबाता रहा। अब भी यह भौतिक आतंक कभी-कभी मेरे मन में जागरित हो उठता है। फिर भी अब मैंने अपने मन को बहुत समझा लिया है और जीवन को एक नयी दृष्टि से नये रूप में देखने लगा हूँ और साधारण से साधारण घटना भी कभी-कभी मेरे मन में एक अलौकिक आनन्द का आश्चर्य उत्पन्न करने लगती है। किसी स्त्री

को देखते ही अब मेरे हृदय में एक श्रद्धापूर्ण उत्सुकता का भाव जाग पड़ता है। ऐसा मालूम होने लगता है जैसे मैंने अपने जीवन में पहले कभी स्त्री को देखा भी न हो, अब पहली बार इस आनन्ददायिनी रहस्यमयी जाति के अस्तित्व का अनुभव मुझे हुआ हो।"

महेन्द्र का लंबा लेक्चर समाप्त होते ही चश्माधारी सज्जन 'हाः हाः' करके ठठाकर हँसते हुए बोले, "आप भी बड़े मजे के आदमी हैं। खूब !" यह कहकर वह बेंच पर आराम से लेट गये और उन्होंने आँखें बन्द कर लीं। थोड़ी देर बाद वह जोरों से खर्राटे लेने लगे।

एक लम्बी साँस लेते हुए महेन्द्र ने प्रायः अंधकार में अस्पष्ट झलकती हुई गुलाबी साड़ी की ओर देखा। दो आँखों की मार्मिक दृष्टि की तीव्र मोहकता उस अर्द्ध अंधकार में भी विस्मित वेदना की उत्सुक उज्ज्वल रेखाओं को विकीरित कर रही थी। महेन्द्र पुलक-विह्वल होकर मंत्र-मुग्ध-सा बैठा रहा।

घंटी बजी, दिल्ली को जानेवाली गाड़ी के आने की सूचना देते हुए सिगनल डाउन हुआ। सामने रक्त आकाश-दीप के बदले हरे रंग का प्रकाश जल उठा। यह हरित् आलोक महेन्द्र के मानस-पट में साड़ी के गुलाबी रंग के साथ मिलकर एक स्निग्ध-शुचि सौंदर्य-लोक का सृजन करने लगा।

थोड़ी देर में दूर ही से गाड़ी का सर्च लाइट दिखाई दिया। चश्माधारी महाशय महेन्द्र के जगाने पर फड़फड़ाते हुए उठे। कुलियों ने सामान सँभाल लिया। भक-भक करती हुई गाड़ी प्लेटफार्म पर आ लगी। बड़ी भीड़ थी। चश्माधारी सज्जन को महिलाओं के साथ कुली लोग इंजिन की उलटी ओर बहुत दूर तक ले गये। कहीं स्थान न पाकर अन्त में एक डिब्बे में जबरदस्ती घुस गये। महेन्द्र भी उन लोगों के साथ-साथ जा रहा था। पर जिस डिब्बे में वे लोग घुसे उस डिब्बे में स्थान का निपट अभाव देखकर वह विवश होकर एक दूसरे डिब्बे में चला गया। वहाँ भी काफ़ी भीड़ थी। किसी प्रकार उसने अपने बैठने के लिये थोड़ा-सा स्थान बनाया।

गार्ड ने सीटी दी। गाड़ी चल पड़ी। महेन्द्र के मस्तिष्क में नाना अस्पष्ट भावनाएँ चक्कर लगाने लगीं। दो दिन से उसे नींद नहीं आई थी। आज भी वह अभी तक सो नहीं पाया। इसलिये सोचते-सोचते वह ऊँघने लगा। ऊँघते हुए उसने देखा कि गुलाबी रंग की साड़ी द्रौपदी के चीर की तरह फैलती हुई अकारण सारे आकाश में छा गई है। सहसा दो स्थानों पर वह गगनव्यापी साड़ी फटी और उन दो छिद्रों से होकर दो वेदनाशील, तीक्ष्ण, उज्ज्वल आँखें तीर की तरह प्रखर वेग से उसकी ओर धावित होकर एक रूप में मिलकर एक बड़ी आँख के आकार में परिणत हो गईं। वह बड़ी आँख उसके शरीर को छेदकर उसके हृत्पिण्ड को छूकर फिर ऊपर आकाश की ओर तीर की तरह छूटी और आकाश में फैली हुई गुलाबी साड़ी में जा लगी और फटकर फिर से दो सुंदर, किंतु करुणा-विकल आँखों के आकार में विभक्त हो गई।

टूंडला स्टेशन पर गाड़ी ठहरने पर महेन्द्र पूर्णतः सचेत होकर बैठ गया। चश्माधारी महाशय दोनों महिलाओं को साथ लेकर कम्पार्टमेंट सें बाहर उतरे और सामान को कुलियों के हवाले करके उनके साथ बाहर फाटक की ओर चले। महेन्द्र ने अपने कम्पार्टमेंट से अपनी विश्व-विजयिनी को देखा। वह इस उत्सुकता में था कि एक बार अंतिम समय के लिये दोनों की आँखें चार हो जावें, पर न हुईं और गुलाबी साड़ी से आवृत सजीव प्रतिमा व्यस्त विह्वलता से आगे को निकल गई।

टूंडला से गाड़ी छूटने पर महेन्द्र के कानों में चश्माधारी सज्जन के ठठाकर हँसने का शब्द गूँजने लगा। उससे अदृष्ट की चिर व्यंग पुकार मानों बार-बार कहती थी—हाः हाः! आप भी बड़े मजे के आदमी हैं। खूब!

● ● ●